# 'लाल बहादुर शास्त्री'

## (महाकाव्य)

जन्म साधारण, मृत्यु महान
धरा का गर्व गगन का गान।
शिखर पर जा पहुंचा कण एक
बना इतिहास, बना उपमान।।

प्रणेता —
**लक्ष्मी प्रसाद गुप्त**
एम० ए० (हिन्दी, राजनीति), एल० टी०
प्रवक्ता,
इण्टर कालेज बबेरू (बाँदा) उ० प्र०

अविरल प्रोत्साहन के स्रोत
अभिन्न सुहृदवर
डा० रामशरण जी मिश्र
के कर-कमलों में
सस्नेह समर्पित

'सुख में, दुख में जो है अपना ।
अर्पित है उसको यह रचना ।।'

# -: अनुक्रमणिका :-

# -:दो शब्द:-

आज के युग की महती आवश्यकता मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा है। राष्ट्रीय आदर्शों एव लक्ष्यो के प्रति जागरूकता, समाजवाद एवं धर्म निर्पेक्षता, दायित्व-बोध एवं अनुशासन, राष्ट्र-गौरव एवं देश भक्ति, विश्व-बन्धुत्व एवं मानवतावाद युद्ध के प्रति घृणा एव शान्ति के प्रति अनुरक्ति, समानता एवं स्वतंत्रता, प्रजातंत्र पर आस्था एवं भावात्मक एकता, त्याग एव बलिदान की उदात्त भावनाए विश्व के मांगलिक दिशा-सूत्र है।

प्रस्तुत रचना मानवीय मूल्यो से ओत-प्रोत कुछ इन्ही मांगलिक दिशा सूत्रो के साकार रूप स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री' के जन अनुकरणीय जीवन-दर्शन की काव्यात्मक अवतारणा है। श्री शास्त्री जी, भारतीय संस्कृति के महान आदर्शो के व्यवहारिक प्रतीक, राजनैतिक ईमानदारी के ज्वलन्त उदाहरण, राष्ट्र के निर्माण व विकास के कुशल शिल्पी एवं समग्र मानवता के हित मे सर्वस्व न्योछावर करने वाले लघुकाय विराट् व्यक्तित्व के धनी रहे है। इस रचना मे, तत्कालीन परिस्तियो, मनःस्थितियो एवं उपलब्धियो के सन्दर्भ मे मैं इस महान चरित्र का काव्यात्मक रेखाकंन कहा तक कर सका हू इसे विज्ञजन ही जाने। मैं तो आदर्श एवं व्यवहार के सामन्जस्य की अभिव्यक्ति का साधन ही रहा हूं।

पूज्य शास्त्री जी जन-जन के थे। आज उन्ही के जीवन की काव्य धारा जन-जन के अवगाहन के लिए जन-जन के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष, सहज सन्तोष एवं गुरु गौरव का अनुभव हो रहा है। मुझे जिनका आशीर्वाद मिला,

उनके प्रति मेरी कृतज्ञता, जिनका यत्किञ्चित् भी प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग मिला, उनके प्रति मेरे आभार और जिनके श्रम-स्वेद-विन्दु मिले, उनके प्रति मेरे साधुवाद-कोटि-कोटि राशि-राशि, भूरि-भूरि ।

अन्त में बस इतना ही—

है आदर्श न कलित कल्पना, ये हैं जीवन के व्यवहार ।
मानव-मूल्य प्रतिष्ठित होने से हो मंगलमय संसार ।।
जन-जीवन के संघर्षों मे जागे जीवन की मुस्कान ।
हर मानव मानव बन जाये पाकर मानव की पहचान ।।

लक्ष्मी प्रसाद गुप्त

## —: संदर्भ :—

लिखा था करुण काव्य अतुकान्त,
धाय माँ पन्ना का वृत्तान्त ।
एक दिन उठो कल्पना कान्त,
करू क्यों काव्य न एक तुकान्त ।।

भाग्य से दिखा चरित संभ्रान्त,
पूज्य शास्त्री सा नर एकान्त ।
सरल, सच्चा, मृदुभाषी, शान्त,
त्याग-सेवा का सिन्धु प्रशान्त ।।

विजय दी जब भारत आक्रान्त
राह दी जब भारत विभ्रान्त ।
साँस दी जब भारत परिश्रान्त
अहिंसक क्रान्ति मना विक्रान्त ।।

एक अरुणोदय मिटता ध्वान्त
एक सम्बल जीवन्त अक्लान्त ।
एक आदर्श उदात्त नितान्त
एक परिचय दुखान्त सुखान्त ।।

देश के लिए प्यार चूडान्त
विश्व के लिए भाव दृष्टान्त ।
शान्ति संघर्ष, शान्ति प्राणान्त
....... एक श्रद्धाँजलि शान्त ।।

## -: निवेदन :-

भारत की माता का लाल जो बहादुर था
शास्त्री सा स्वदेश भक्त और कौन दूसरा
देश के लिए जिया जो देश के लिए मिटा
घूम-घूम आरती उतारती वसुन्धरा

★ ★ ★

प्राण पुण्य माला में जिसके पिरोयी हुई
त्यागमयी लड़ियों पर सेवा की मुक्ताएँ
लेखनी उरेह उसी शारदा—सपूत के
जीवन की काव्य मयी प्रेरक सु—रेखाएँ

★ ★ ★

## * राष्ट्रीय गीत *

अक्षय मंगल गाथा तेरी जय हो भारत माता ।
शीश किरीट हिमालय राजे,
सागर चरण पखारे ।
कच्छ, बंग, गगा, कावेरी,
दिल्ली रूप सवारे ।।
पुण्य तिरंगा फहरे । मानस—मानस लहरे ।।
अमर रहे यह नाता ।
लोकतन्त्र शासन विधि तेरी शुभ हो भारत माता ।
शुभ हो ! शुभ हो ! शुभ हो !
शुभ जय, शुभ जय हो !!

## मंगलाचरण

# (राष्ट्र देवो भव)

प्रभु का प्रिय लीला प्राङ्गण
वसुधा में सबसे न्यारा ।
नैसर्गिक सुषमा अञ्चल
यह भारत वर्ष हमारा ॥
है उषा मनोहर जिसकी
अनुपम संध्या मधुराका ।
हिमगिरि ऊँचे फहराता
जिसकी शुभ धवल पताका ॥
है जहाँ सुमेरु अरावलि
विन्ध्याचल पर्वत माला ।
शुभ चित्रकूट का चंदन
मस्तक का तिलक निराला ॥
गंगा यमुना गोदावरि
रेवा तमसा की धारा ।
छलका अमृत घट पावन
मानों सारा का सारा ॥
है हिन्द—महासागर नित
जिसके चरणों को धोता ।
दिनकर जगकर प्रातः ही
मोती के हार पिरोता ॥
पपिहा पी—पी, बन बोले,
कोयल कूके अमराई ।
शुक, सारी सीखें भाषा
तमचोर भोर शहनाई ॥

५

चातक चखता अंगारे
जल स्वाति चकोर पिये रे ।
कॉकर—कण कुमरी भखती
मोती चुग हंस जिये रे ।।
बन्धूक हसे दोपहरी
संध्या भर आछी महके ।
तम उगते रजनी गधा
बेला निशीथ में गमके ।।
जिसके शुभ पर्व निराले
विजया, दीवाली, होली ।
जिसकी ऋतुएं मनचाही
है ईद भरी हर झोली ।।
मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर
है जहाँ सभी के तीरथ ।
जिनके विश्वास जहाँ पर
होते परिपूर्ण मनोरथ ।।
बिश्वेश गरुड़ पर चढते
शंकर की बैल सवारी ।
मूषक गणेश को प्रिय है
भैंसा यम की लाचारी ।।
शिल्पी के जहाँ कुशल कर
प्रस्तर मे जीवन भरते ।
गुरुओं के ज्ञान प्रभा-स्वर
अज्ञान—तिमिर कुल हरते ।।

अध्यात्म ज्ञान का वैभव
है कभी न जिसका रीता ।
निज मति से यन्त्र बिना ही
जिसने रहस्य हर जीता ॥
आख्यान विजय के जिसके
है प्रतिध्वनित अम्बर में ।
जिसके अतीत का गौरव
अंकित है अधर—अधर में ॥
वेदों की गूँज जहाँ है
भाई है जहाँ भरत सा ।
है चिता जहाँ जौहर सी
है शौर्य जहाँ विक्रम सा ॥
मथुरा वृन्दावन बृज की
है जहाँ कथा कल्याणी ।
जन-जन मे जीवन भरती
'मानस' में उतरी वाणी ॥
जिस भूमि जन्म पाने को
देवता तरसते रहते ।
जिसके चेतन उपवन मे
आदर्श महकते रहते ।
पर—दारा जननी जैसी
पर—धन मिट्टी का ढ़ेला ।
हर प्राणी अपने जैसा
आदर्श जहाँ अलबेला ॥

जिसकी हर नारी सीता
जिसकी हर पुस्तक गीता ।
जग को अमृत घट देकर
जिसका शंकर विष पीता ॥
है जहाँ व्यक्ति ने पर-हित
सीखा जीना या मरना ।
इस सारी वसुधा को ही
माना कुटुम्ब है अपना ॥
मुस्काते बलिदानों की
जिसकी परम्परा भायी ।
चल सत्य अहिंसा के पथ
जिसने स्वतन्त्रता पायी ॥
जिसमें मंगलमय पलते
जनतन्त्र मूल्य है जग के ।
सधते है जहां समन्वित
पग आत्मिक भौतिक मग के ॥
मानवता ने स्वर जिसके
अपने स्वर सहज मिलाये ।
जिसके दो लाल लुटे कल
जग ने आंसू बरसाये ॥
प्रिय पावन रज से जिसको
है जन्म—जन्म का नाता ।
वह राष्ट्र देव भारत है
हम सबका भाग्य विधाता ॥

हे देव ! चरण कमलो में
शत कोटि कोटि अभिवादन ।
भर दो धन—धान्य धरा में
गृह—गृह हों मंगल गायन ॥
भावात्मक ऐक्य उगे रवि
बिघटन का तम—कुल भागे ।
नव भारत के कण—कण में
राष्ट्रीय चेतना जागे ॥

फूल उठे हर क्षेत्र में कुछ ऐसा उत्कर्ष ।
अग—जग का इतिहास बन महके भारत वर्ष ॥
शस्य श्यामला राष्ट्र धरा हो ।
हर विहान समृद्धि भरा हो ॥
घर—घर जीवन खेल रहा हो ।
हर जीवन पीयूष भरा हो ॥
हे राष्ट्र ! देवता वाणी दो
उर—तन्त्री में झंकार भरूँ ।
तेरे पुनीत यश—परिमल की ।
कविता मे सुरभि अपार भरूँ ॥
यह काव्य एक श्रद्धांजलि हो
शास्त्री जी की पुण्य—स्मृति में ।
वह देश—प्रेम की सुधा बहे
यह धरा रँगे निज संस्कृति मे ॥

हे भारतमाता ! वाणी दो
भावना—सिन्धु में ज्वार उठे।
कल्पना—झरोखे से कविता
उज्ज्वल इतिहास निहार उठे॥
हो शब्द—शब्द मे देशभक्ति
बलिदान—प्रेरणा हो गति में।
स्वर—स्वर स्वराष्ट्र की गरिमा हो
झिलमिल अपना दर्शन कृति में॥

## उदय (पहला सर्ग)

'उत्तर प्रदेश' है प्रान्त एक
शोभित भारत के अञ्चल में ।
आकाश दीप ज्यों दीपों में
है चन्दन ज्यों मलयाचल में ।।
मस्तक पर शुभ्र मुकुट, उर में
गंगा, यमुना की मालाएं ।
सारा भारत ही बसे यहाँ
केन्द्रित स्वदेश की आशाएं ।।
पखुडी एक इस शतदल को
शुभ 'मुगल सरायँ' नाम धात्री ।
दिन एक सदा के लिए बनी
जो राशि—राशि यश की पात्री ।।
आ पहुँची 'चार शरद' लेकर
जब प्रांगण मे 'उन्नीस सदी' ।
कायस्थ पुण्य कुल के अदृष्ट
तब जग की दृष्टि, पडी हस दी ।।
जब प्रसव कक्ष मे नन्हा सा
शिशु 'कहाँ, कहाँ', था बोल रहा ।
पट स्वागत के लिए एक बार
दो अक्टूबर था खोल रहा ।।
'शारदा प्रसाद' सदन में जब
मंगलमय बाजे बाज उठे ।
सध्या के कर तारों के मिस
तब दीप आरती साज उठे ।।

जब 'रामदुलारी देवी' की
शुभ गोद भरी भारत माँ ने ।
तब राष्ट्र देव के अधरों पर
खिल गई निराली मुस्कानें ।।
माँ की ममता के पलने में
वह 'नन्हा' लाल लगा पलने ।
नित नवल दुलार पिता का पा
वह स्वर्ण—विहान लगा बढने ।।
उस 'मुगल सरांय' क्षेत्र में ही
मानो सब मोद समिट आया ।
हर सुमन विहँसता उपवन में
कुछ नया और सौरभ छाया ।।
नाना बधाइयाँ सोहर गा
आँगन के गीत न थकते थे ।
सोने का सुमन खिलाने को
प्रतिवेशी नित्य उमडते थे ।।
गोरे—गोरे नन्हें - नन्हे
'नन्हें' के कर क्या चलते थे ।
नन्हें पावों की क्रीडा में
मुख के सयांग मचलते थे ।।
मुख की मृदुता में दृढ कितने
अनजान मौन स्वर पलते थे ।
नन्हें के लहराते कोमल
केशों में नयन उलझते थे ।।

जग के परिचय की जिज्ञासा
नयनों मे घूम रही होती ।
तो कभी रुदन की क्रम-लहरी
घर में जीवन भरती होती ।।
लोरियाँ मधुर गाकर दादी
नित उसे सुलाया करती थी ।
मृदु शीतल मन्द—स्पर्शो से
आ वायु जगाया करती थी ।।
दिनकर प्रतिदिन प्रातः आकर
शिशु—छबि से मन बहलाता था ।
जगमग तारो से नील निलय
नित दीपावली मनाता था ।।
संध्या का झुक-मुक होते ही
सज-धज रजनी घर आती थी ।
वसुधा के चञ्चल अञ्चल मे
मोती बिखराकर जाती थी ।।
गंगा उछालती थी प्रमुदित
कर—लहरो से अगणित हीरे ।
यों हँसी खुशी मे बीत गये
दो—तीन मास धीरे—धीरे ।।
कर लिये कुंभ आ गया माघ
गंगा का पावन जल भरने ।
डुबकियाँ नहाने लगी पुण्य
हर घाट लगा मेला करने ।।

गगा मइया की जय जय जय
बोलो ग गा मइया की जय ।
धरती अम्बर में गू ँज उठी
ग ंगा मइया की जय जय जय ।
ढल रहे पुण्य के शुभ जल कण
सित–असित स्नात नव अ गो में ।।
तो उधर उमड़ती आती थी
सात्विकता सुधा तरगों में ।
नन्हे की माँ भी श्वसुर सग
नन्हे को लेकर जा पहुँची ।।
तट भाव—भग तट भीड़–भरा
गति बाम नियति सकुची–सकुची ।
च ंचल लहरों से दौड़—दौड़
अगणित नौकाएँ खेल रही ।।
आपस में एक दूसरे को
आगे–पीछे हो झेल रही ।
था एक नाव पर झाँक रहा
वह 'नन्हा' माँ के अञ्चल से ।
दिनकर नहान था देख रहा
झीने नीलाभ पटल तल से ।।
सहसा श्यामल घन—खण्ड एक
आकर दिनकर को लूट घिरा ।
तो इधर उलटती नौका से
माँ के कर से शिशु छूट गिरा ।।

हलचल क्रन्दन हलचल क्रन्दन
शिशु कहाँ गिरा, शिशु कहाँ गया ।
हा ! लाल ! कहाँ नन्हे प्यारे
तू कहाँ गया, तू कहाँ गया ॥
माता के बिछुड़े सम्बल को
हर यत्न ढूँढ कर हार गया ।
सबने समझा वह डूब गया
घर का स्वर्णिम संसार गया ॥
पागल जननी रोती लौटी
सूना आँचल, सूनी ममता ।
दुख ही है सत्य यहाँ सुख तो
बहता पानी जोगी रमता ॥
दादी का कहाँ खिलौना वह
खो गया दुलार पिता का क्या? ।
पट, वायु शीत के खोल--खोल
थी ढूँढ रही उसको ही क्या? ॥
मेघों के सघन आवरण मे
दिनकर मुख मलिन छिपाता था ।
आकाश बिलखती माँ का दुख
अवलोक अश्रु बरसाता था ॥
आशाएं भग्न मनोरथ सब
प्रातः ही सध्या घिर जाती ।
रजनी उतार निज आभूषण
घर, काले वस्त्र पहन आती ॥

दुख की असीम बदली छाई
माँ के उजड़े उर—उपवन में ।
रोती लम्बी साँसे पगली
सुधियों के सूने आँगन में ।।
जननी की दृष्टि तरल जब उस
सूने पलने पर जाती थी ।
तब करुण विलापों को सुन-सुन
धीरज की फटती छाती थी ।।

(१)

प्रिय लाल, मुझे हा ! छोड गया ।
जीवन वीणा के तारो को वह निर्मोही हा ! तोड गया ।
प्रिय लाल मुझे हा ! छोड़ गया ।।
बडी मगन थी मै अपने में ।
भोग रही थी सुख सपने मे ।।
नीड़ मनोहर स्वप्नों का वह कौन अचानक तोड गया ।
प्रिय लाल मुझे हा ! छोड़ गया ।।
जीवन लतिका हरी—हरी थी ।
मेरी गोद पराग भरी थी ।।
पर झंझा का एक झपेटा, सहसा आ झकझोड़ गया ।
प्रिय लाल मुझे हा ! छोड़ गया ।।
मुझे मिला था एक सहारा ।
पहुँच रहा था पास किनारा ।।
कि दैव घाती मेरी गति विपरीत दिशा को मोड़ गया ।
प्रिय लाल, मुझे हा ! छोड़ गया ।।

## रूठ गया आलोक सदन का

कैसा किया नियति ने टोना ।
आँखे मूँद गया हर कोना ॥
असमय ही बुझ गया हमारा स्नेह-भरा कुल-दीप ललन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥
घर के सुख का बाल—डिठौना ।
मन का था अनमोल खिलौना ॥
तोड़ सभी ममता के बन्धन डूबा तारा भाग्य—गगन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥
कल ही तो सुख—सुमन हँसे थे ।
सौरभ के सन्देश बसे थे ॥
उजड़ गया हा ! आज अचानक सब शृंगार-साज उपवन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥
सोने के दिन साँझ सुनहली ।
हर चाँदी की रात रुपहली ॥
बिना लाल के सब माटी हो गया हमारा जग कंचन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥
आशाओं के मधुर हास का ।
प्राणों के नव—नव विकास का ॥
अनबोला इतिहास लाल के संग गया सब कुछ जीवन का !
रूठ गया आलोक सदन का ॥
हा ! अब 'नन्हा' किसे कहूँगी ।
प्यार अंक भर किसे करूंगी ॥
सुरसरि की चञ्चल लहरों में खोया स्वर्णिम सम्बल मन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥

तुमको प्यारा था वह पानी ।
किन्तु न माँ की ममता जानी ॥
देख इधर बह रहा न कितना स्नेह-सुधा-जल भरे नयन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥
देख रही कब तक रूठोगे ।
क्या न कभी माँ को ऊबोगे ॥
भूख लगेगी, कौन दौड़कर दूध पिलायेगा निज तन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥
जी भर कर मै खिला न पायी ।
आँचल मे मैं छिपा न पायी ॥
देख लिया उस क्रूर काल ने शेष करुण यह गीत रुदन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥
सुख की सीमा बीत चुकी है ।
शक्ति जीवनी रीत चुकी है ॥
इन साँसो की वीणा मे बल रहा न दुख के राग-वहन का ।
रूठ गया आलोक सदन का ॥

(३)

भोर स्वप्न में लाल मिला ।
जैसे ही कुछ आँख लगी थी ।
देखा, सन्मुख एक नदी थी ॥
लोल लहर के दूर छोर पर, ।
बहती मुस्कालित एक कली थी ॥
लगा लाल का कली-द्वार से बदन झाँकता धुला—धुला ।
भोर स्वप्न मे लाल मिला ॥

अंकित अब भी हृदय पटल में।
देखा उस गृह के अञ्चल में॥
नन्हा सा शिशु, एक अपरिचित।
सौंप रहा माँ के सम्बल में॥
शिशु ने मेरी ओर निहारा, मेरा—हृदय सरोज खिला
भोर स्वप्न में लाल मिला।

४

देखा है जब से सपना।
कुछ ऐसा आभास हो रहा,
पतझड़ में मधुमास हो रहा,
तम कुछ अपने रंग खो रहा;
लो पुलकित हर अंग हो रहा।
उर—तन्त्री के स्वर कह उठते 'लाल नहीं डूबा अपना।
देखा है जब से सपना॥
क्यों हँसती ये आज दिशाएँ,
नभ निरभ्र अनुकूल हवाएँ
जाग रही कुछ कुछ आशाएँ
लगता बदल रही रेखाएँ,
जग कहता है भोर—भोर का होता सदा सत्य सपना।
'लाल नहीं डूबा अपना।
देखा है जब से सपना॥

(५)

हे गंगा, मंदाकिनी, हे जाह्नवी पुनीत ।
हे सुरसरि, भागीरथी, हों विनीत पर प्रीत ॥
हे शिव जटा विहारिणी !
हे अघ—पुंज विदारिणी !
मुक्ति—प्रदा हे पुण्य—जला !
हे सबला ! मैं हूँ अबला ।
मुझ पर करो कृपा की कोर ।
मेरे दुख का ओर न छोर ॥
हे ध्रुव नन्दा, स्वामिनी ।
सदा रही अनुगामिनी ॥
क्या त्रुटि मुझसे हो गई ।
तेरे द्वारे रो गई ॥
हो तुम क्षमा—विधायिका ।
तुम दयालु ! मैं याचिका ॥
बहुत सहा अब हँसने दो ।
कुछ वात्सल्य बरसने दो ॥
भारत की कल्याणी हे ।
आर्य—धरा की वाणी हे !!
तुम हो सदा अमरता—दानि !
हे पुत्रदा ! पसारो पाणि ॥
जनम—जनम गुण गाऊँगी ।
स्यात् लाल पा जाऊँगी ॥
ब्याह बधू जब लाऊँगी ।
पियरी तुम्हें चढाऊँगी ॥

अपने स्वप्न सजाऊंगी ।
ऐसा उसे बनाऊंगी ।।
घर—परिवार न जानेगा ।
धरती निज पहचानेगा ।।
यश तेरा विस्तार सके ।
तेरे शत्रु संहार सके ।।
इसी लिये हूँ चाहती ।
आगे हाथ पसारती ।।
हे भूतिदा ! भवायना !
और न कोई कामना ।।
माँ से माँ की विनय यही ।
पोछो धारा नयन—बही ।।
या मुझको सुत वायस दो ।
या मुझको भी आश्रय दो ।।
जी न सकूंगी लाल बिना ।
तेरी सौ माँ लाल बिना ।।
त्रिपथ गामिनी ! कि बहुना ।
जी न सकूंगी लाल बिना ।।
एक एक पल कल्प सम गये पाँच दिन बीत ।
वर्तमान मे वेदना, भरता रहा अतीत ।।
लुंठित सी चेतना ।
राशि—राशि वेदना ।।
शून्यता न भर सकी ।
आर्द्रता न ढ़र सकी ।।

हर निशि—वासर रही सिसकती
उस माँ की ममता ।
ओस—भरी रह—रह हिलती हो
जैसे म्लान लता ।।
छाई रहती गहन उदासी
पलकों के जग में ।
पागल दृष्टि खोजती फिरती
कुछ सूनेपन में ।।

## विकास (दूसरा सर्ग)

तम को बरसा करते रीती
रात, प्रभात हुआ ।
सर—सरिता के उर का विकसित
हर जलजात हुआ ।।
भर सौरभ से अपना आँचल
मन्थर वायु बही ।
उधर बजी भ्रमरावलियों की
गुन—गुन मृदु-तुरही ।।
दिनमणि हिमकण हेम करों से
चुनता चमक रहा ।
नव आलोक भरा वसुधा का
आनन दमक रहा ।।
वन उपवन आँगन में जैसे
जैसे धूप खिली ।
प्रकृति, जीव को नयी चेतना
स्फूर्ति नवीन मिली ।।
दिन के बलते चरणों को जब
आधी राह रही ।
तब शारदा प्रसाद — सदन पर
अमित भीड़ उमड़ी ।।
कहाँ लाल कैसे पाया ? जो
आता पूछ रहा ।
इंगित पाकर एक अपरिचित ने
वृत्तान्त कहा ।।

(१)

"मैं ही लाल यहाँ लाया।
एक किसान एक अनजानी सी बस्ती का मै वासी।
नही किसी से परिचय पूछो मातृभूमि जब तक दासी।।
अपनी धरती का बेटा बस परिचय इतना ही मेरा।
जिसका जीवन अस्त-व्यस्त उजडी आशाओं का डेरा—
औ' पराधीनता की काया।
मै ही लाल यहाँ लाया।।
स्मृति में अंकित भोर कि जब मैं पुत्र-प्राप्ति का वर पाने।
था पहुँचा श्रद्धा सहित पुण्य—सलिला मे कुम्भ नहाने।।
जय माँ गगे, जय माँ के स्वर लहराते इकतारा मे।
उमड़ रहा था धार्मिकता का सागर सरिता—धारा में—
यह लाल वहीं मैंने पाया।
मैं ही लाल यहाँ लाया।।
गगा माँ का वरद पुत्र पा मैं प्रसन्न मन घर आया।
पत्नी के अञ्चल में सौपा उर उसका कुछ भर आया।।
बोली हाय! बिलखती कितनी होगी इस शिशु की माता।
मै ही कितनी कलपी थी जब सुत से टूटा था नाता।।"
माँ की और कौन समझे गति जाने घायल घायल की।
उस जैसी हो उसकी ममता विशिष्टता मानवता की —
निःस्वार्थ प्रेम नैसर्गिक छाया।
मै ही लाल यहाँ लाया।।
"गोद एक माँ की सूनी हो मैं निज गोद बसा डालूँ।
उजडे आँगन एक और मैं खेल—रहा आँगन पा लूँ।।
यही भाग्य मे होता मेरे तो क्यो निज सुत ही खोती।
होगा नही; नही होगा यह, ढूँढो होगी माँ रोती।।
बस तब से मै ढूँढ रहा था सौपूँ जिसकी यह थाती।
किस कुल का यह दीप और किस सदन-ज्योति की यह बाती-
है आज कही जाकर पाया।
मै ही लाल यहाँ लाया।।

सब बोले "तुम धन्य, यही है
सच्ची मानवता ।
धन्य तुम्हारी पत्नी जैसी
पर – दुख – कातरता ॥
बड़े भाग्यशाली है ये भी
खोया लाल मिला ।
अकथ, अपार, अनन्त विलक्षण
कृपा पुण्य सलिला ।।"
लाल मिला क्या सूने घर को
जैसे प्राण मिले ।
बाल—अरुण के दरस—परस से
उर के सुमन खिले ॥
चहल—पहल का सोया जग, ले
करवट, जाग, हंसा ।
दुख की युग—तन्त्री के मुख पर
सुख का राग बसा ॥
निज माँ की ममता पा दिन–दिन
दूना लाल बढा ।
अंग उभरते, रूप निखरता
आकृति—शाण चढा ॥
मास—करों से समय पलटता
दिन—निशि पृष्ठ रहा ।
हास—रुदन मे शैशव झिलमिल
पलता साथ रहा ॥

बीत गये कब सत्रह मास, न
कोई जान सका।
सुख—चरणों को चपला गति क्या
कोई माप सका ?
किन्तु विधाता देख सका कब
किसका खेल बना ?
कैसे सहता सौ सुख का यह
भला वितान तना ?
जलते दिन की एक दोपहर
सबको रुला गई।
गृह—स्वामी को चिर निद्रा में
अगमय सुला गई॥
रामदुलारी का सुहाग, जग
रोता छोड़ चला।
चढता सूरज अस्ताचल की
मानो ओट ढला॥
किस हाथों ने क्षेम सदन का
क्षण में छीन लिया।
शिशु को पितृहीन, पत्नी को
विधवा दीन किया॥
सुख की छाती मे यह किसने
बर्छी हूल दिया।
सिन्दूरी शोभा को किसने
सूनी धूल किया॥

शैशव की हँसती वादी में
काली घटा घिरी।
आकाक्षाओं की कलियों पर
बिजली कौंध गिरी॥
पति के जाते ही सुख—स्वप्नो
का प्रासाद ढहा।
माँ का जीवन एक विवशना
बनकर शेष रहा॥
मूर्तिमती हो यथा उदासी
ऐसी म्लान — मुखी।
या कि बीच ही बुझे दिये की
बाती धूम्रमुखी॥
हर सात्वना रुलाती भर—भर
ऐसी विषम व्यथा।
जीवन की हर घडी बन गई
एक दुखान्त कथा॥
निज अबोध सुत की भावी पर
माँ का सोच बढा।
तिमिर—पटल पर एक निराशा
का ही लेख कढा॥
क्या होगा इस शिशु का ? इसने
क्या अपराध किया ?
क्यों निर्दोष सुमन को विधि ने
अथ अवरोध दिया ?

प्राण काम्य थे उसे, नहीं क्यों
मेरे प्राण लिये ?
मृत्यु भली जीवन से जिसमें
पल—पल मृत्यु जिये ॥
एक तीर से दैव—व्याध ने
कई शिकार किये ।
मैं मृत सी, असहाय लाल, हा !
भावी गरल पिये ॥
निज पुत्री की करुण दशा यह
पिता न देख सके ।
लिवा गये निज घर समझाकर
भावी बस किसके ?
श्रम अपना यदि विपदाओं को
विधि का शाप कहें ।
ये तो वे सरितायें जो सुख—
सागर ओर बहें ॥
हर विपत्ति है एक कसौटी
मूल्य मिला करते ।
शूल बीच ही तो गुलाब के
फूल खिला करते ॥
काले परदे में है छिपता
स्वर्णिम भोर न क्या ।
नव वसन्त खिलता है पतझड़
की ही याद न क्या ॥

बिना दबाये बटन कभी क्या
विद्युद्दीप दिपा ?
स्यात् इसी होनी में शिशु का
हो कल्याण छिपा ॥
भावी होनी, इसे व्यर्थ जग
अनहोनी कहता ।
बस न किसी का, जो होना है
वही हुआ करता ॥
इसीलिए उस मंगलमय प्रभु
पर विश्वास करो ।
यह क्या, हर होनी को धीरज
धर स्वीकार करो ॥
अभी हजारीलाल, लाल का
नाना जीवित है ।
क्यों अनाथ यह ? जब तक ममता—
सिन्धु तरंगित है ॥
बेटी ! रो न लाल को देखो
कैसा सूख रहा ।
आँगन—क्षुप ने भला असिंचन
की कब धूप सहा ?
तुम माँ हो, कर्तव्य तुम्हारा
तुम्हें पुकार रहा ।
इस शिशु का हर हास—रुदन, बस
तुम्हें निहार रहा ॥

माँ पर इन हितकर वचनों का
अमित प्रभाव हुआ ।
साथ समय के दुख का क्रमश.
क्षीण अभाव हुआ ॥
रामनगर जा लगी सास के
पास पुनः रहने ।
विस्मृति के रहस्य मे जुडने
लगे भव्य सपने ॥
घर के कोने-कोने शिशु का
भरने हास लगा ।
शब्दो की जुडती लडियो मे
अर्थाभास जगा ॥
क्रीडा अथक खेलती उसकी
लाँघ पडोस गयी ।
और लेखनी ज्ञान कक्ष के
खोल कपाट गयी ॥
'नन्हे' 'लालबहादुर' बनकर
कुछ ऐसे निखरे ।
कठिनाई से लडने जैसे
अवसर ही सँवरे ॥
एक बार मेले से लौटे
पैसा पास न था ।
उमड़ी गगा तैर पार की
ऐसा साहस था ॥

नाना के घर सहनशीलता
का गुण सीख सके ।
दीन परिस्थिति मे धीरज का
पाठ मिला कसके ।।
शान्त, उदार स्वभाव, सादगी
कुल की परम्परा ।
निष्ठा, अध्यवसाय, लगन को
चुन—चुन स्वय वरा ।।
समझ — बूझकर चलने, कहने
का अभ्यास किया ।
छल—छिद्रों से दूर सरलता
का विन्यास लिया ।।
लघुता में प्रभुता के बीजो
का आभास मिला ।
गुण—उपवन मे पल—पलकर
उनका व्यक्तित्व खिला ।।
उधर उलटता देश दासता
के परिशिष्ट रहा ।
इधर तीव्रता से विकास का
चलता चक्र रहा ।।
पहुँच उन्होंने काशी, ऊँची
शिक्षा प्राप्त किया ।
'काशी विद्यापीठ' अजिर से
'शास्त्रि' उपाधि लिया ।।

इस नगरी ने जीवन को कुछ
अप्रतिम मोड़ दिया।
देश—प्रेम से सदा सदा को
नाता जोड़ दिया॥
प्राच्य ज्ञान के नवोत्थान की
केन्द्र महानगरी।
राष्ट्र मञ्च पर बनकर युग की
क्रान्ति परी उतरी॥
प्राण—प्राण मे राष्ट्र चेतना
की अनुलिपि उभरी।
हर मानस में जन्म भूमि की
मुक्त्येच्छा लहरी॥
'स्वतन्त्रता अधिकार हमारा
'तिलक' पुकार उठे।
सत्य—अहिंसा में गाँधी के
स्व निहार उठे॥
असहयोग आन्दोलन की हर
गली सजी लड़ियाँ।
जा—जा जेल जोड़ते नेता
नित बिखरी कड़ियाँ॥
पाठ्यक्रमी शिक्षक की वाणी
का स्वर वदल गया।
छात्र—छात्र में देश भक्ति का
फूटा राग नया॥

युग—धारा मे लालबहादुर
भी आ कूद पड़े ।
कविता में हो यथा अनन्वय का
पुट फूट पड़े ॥
श्री त्रिभुवन नारायण जैसे
साथी साथ रहे ।
युग—पुकार थी, नये चरण थे
बढ़ते हाथ गहे ॥
दीन, अकिंचन किन्तु व्यष्टि का
स्वार्थ न रोक सका ।
हित समष्टि का एक मात्र बन
गया मन्त्र उनका ॥
गुरुओं की शिक्षा ने उनको
यह सात्विक मति दी ।
जननी ने हर्षित हो—होकर
चरणो को गति दी ॥
कैसे सेवा करूं देश की
नित सोचा करते ।
जन—आन्दोलन का परायण
भी करते रहते ॥
क्रान्ति भावना मानस—सर में
भर—भर उभर रही ।
कुछ करने की, मर मिटने की
लहर लहर लहरी ॥

पर युग—दृष्टा गाँधी जी ने
फूँका मन्त्र नया।
ज्वार क्रान्ति का सत्याग्रह में
उठता डूब गया॥
उर—तन्त्री पर सत्य अहिंसा के
स्वर मुखर हुए।
सामाजिक सुधार सेवा के
गतिमय चरण हुए॥
यशी 'लोक सेवा मण्डल' के
व्रती सदस्य बने।
किया न चिंता टूटे यद्यपि
शिक्षा के सपने॥
ऐहिक सुख का प्रबल प्रलोभन
उन्हे न टोक सका।
तारों भरा गगन वैभव क्या
रवि को रोक सका॥
सेवा हेतु मुजफ्फरपुर को
अपना क्षेत्र चुना।
काम्य अछूतोद्धार, किन्तु था
जन — विरोध दुगुना॥
किन्तु व्रती बाधाओं से कब
मुख मोड़ा करते।
प्रस्तर प्राचीरों पर पारग
पथ फोड़ा करते॥

अवरोधों में लालबहादुर
बढे कमर कस—के ।
घन—खण्डों में यथा चण्डकर
बन प्रचण्ड़ चमके ॥
सेवा, लगन, प्रेम की पावन
संगम धार वही ।
भेद—भाव की जमी मलिनता
जाने कहाँ बही ॥
सर्व प्रथम सेवा का सच्चा
जाना मर्म यही ।
सेवा जैसा अन्य दूसरा
मानव धर्म नही ॥
शाँति—सुरभि, सुख—परिमल वाहक
सेवा—सुमन खिला ।
कष्टो की कुटिया को मानों
हो वरदान मिला ॥
करुण दशा अब जन—जीवन की
उर झांकने लगी ।
घूम—घूम कर्मठता यश का
नभ नापने लगी ।
मंडल का प्रधान कार्यालय
जब प्रयाग पहुँचा ॥
डोर बँधा सा उनका जीवन
वही साथ पहुँचा ।

था प्रयाग तब राजनीति की
धमनी बना हुआ ।
नयन नयन स्वाधीन देश का
सपना सजा हुआ ॥
स्वतन्त्रता की सु—आरती सी
थी कॉंग्रेस गठी ।
मगल—ध्वनि सी भारत माता
की जय गूँज उठी ॥
प्राण—दीप ले लालबहादुर
सबके साथ चले ।
नव सगठन—ज्योति यह पाकर
घर—घर दीप जले ॥
हर्ष—मग्न होती माँ सुन—सुन
सुत की जन प्रियता ।
बुला एक दिन, कहा "बढे नित
तेरी कीर्तिलता ॥
लाल ! किन्तु जन—सेवा मे क्यों
मुझको भूल गया ।
दुखिनी इस माँ के प्रति तेरा
कुछ कर्तव्य न क्या ?
सेवा कर तू जन्मभूमि की
मना नही करती ।
वही एक मेरे जीवन के
सपनो की धरती ॥"

"तो फिर माँ" "रे ! तो फिर क्या ? क्या
समझा नहीं अभी ?
आयेगी भी लाल ! तुम्हे क्या
लौकिक बुद्धि कभी ?
मेरी तो बस एक कामना
करना नही नही ।
तेरा व्याह देखने को ये
आँखे तरस रही ।।"
"माँ ! कामना तुम्हारी सिर पर
बाधा और नही ।
किन्तु तुम्हारे ही सपनो का
अन्त न बने कहीं ।।
इसीलिए हर बार तुम्हे माँ !
मैंने मना किया ।
मानव प्रकृति पतिगे जैसी
है आसक्ति दिया ।।"
"लाल ! अधिक तुझसे भी तुमको
जाने यह जननी ।
'ढुल्लर' नही किसी कैकेयी
जैसी स्वार्थ—सनी ।।
तुम तुलसी के भरत निस्पृही
सेवा व्रती समा ।
चमकोगे बन नित्य पूर्णिमा
कितनी घिरे अमा ।।

तुम चालीस करोड सुतों की
मॉं का ध्यान करो।
इस मॉं की सेवार्थ नव—वधू
आशंका न करो॥"
"मॉं! तुमने जब सोच लिया है
मुझको क्या कहना?
किन्तु शर्त यह, इस 'बचवा' पर
स्नेह न कम करना॥"
मॉं ने छाती से लगा, शर्त किया स्वीकार।
हँसते नयनों मे सजे, ममता मुक्ता हार॥
प्रसन्नता न समायी।
स्वामी की सुधि आयी॥
आँसू सुख या दुख के।
स्यात् सुधा–कण उर के॥
छलकते नयनो से चुपचाप
मोह के निश्छल विमल रहस्य।
मौन थी अम्ब; मौन था लाल
सुखद चिन्तन का अनुपम दृश्य॥
एक थी दिशा, एक था भाव
ब्याह की आकल्पना विभाव।
बही संचारि—बीचियो बीच
भरी अनुभावा रस को नाव॥

## 'जयमाल' (तीसरा सर्ग)

धरा पर आ उतरा था स्वर्ग
चतुर्दिक फैला नव उल्लास ।
पुष्पा धन्वा बसन्त के रूप
बसाये जाता था मधुमास ॥
उषा का मुख कुछ हलका लाल
दिशा की बहकी बहकी चाल ।
थिरकती वन—उपवन के क्रोड
कनक किरणों की चचल बाल ॥
कली के अधरों पर कल हास
फूल मे झिलमिल पिङ्ग पराग ।
उड़ाता भर सौरभ पवमान
सुनाती मधुपावलि मधुराग ॥
प्रकृति थी पहने हरा दुकूल
जड़े जिसमे सतरगे फूल ।
गगन मिलनातुर झुकता दूर
धरा उड़ती बन—बन मृदु धूल ॥
लता थी खोज रही आलम्ब
भरे अञ्चल में नवल उमग ।
उधर सरिता के बन्धन तोड़
भेटती तट को तरल तरंग ॥
सभी में कुछ ऐसा उल्लास
सभी मे कुछ विचित्र उन्मेष ।
प्रकृति औ, पुरुष मिलन का पर्व
गोद बासन्ती मधु परिवेश ॥

लोक जीवन में अमित बहार
राग—रंगो के स्वर्णिम जाल।
महकती मंजु मजरी कुंज
काव्य में ज्यो कल्पना विशाल ॥
नगर 'मिर्जापुर' की शुचि कीर्ति
गुणो की रूप कौमुदी स्नात ।
कनिष्ठा सुता 'गणेश प्रसाद'
'लालमनि' ललिता जग विख्यात ॥
शीलता की सजीव प्रतिमूर्ति
चारुदर्शी अनिद्य प्रिय वेष ।
हृदय करुणा का फलित निकेत
नम्रता की अभिव्यक्ति अशेष ॥
सजाते पन्द्रह सौम्य बसन्त
रहे यह चेतन रेखा चित्र ।
लगा सोलहवाँ भरने रग
भावना मधुर नवीन बिचित्र ॥
एक उत्कण्ठा मृदु अज्ञात
एक हलचल परिव्याप्त अशांत ।
एक नव अपूर्णता अनुभूति
खोजती उन्मन सी एकात ॥
नयन मे भटकी—भटकी दृष्टि
चपलता स करती मनुहार ।
खिचा अंगों में अलस तनाव
टूटती अँगडाइयाँ अपार ॥

अभी पलकें झुकती श्लथ—भार
अभी फूटा पडता उत्साह।
झपकियों में उलझो सी नींद
चकित मुग्धा बेसुध सी चाह॥
समाया संक्रामक संकोच
चली जब से विवाह की बात।
कल्पना हँसती मानस मध्य
उमगों की सजती बारात॥
सोचती ललिता स्वान्त रहस्य
सरल 'दुल्लर' के यशी कुमार।
न परिचय हो कोई सविशेष
याद क्यों आते बारम्बार॥
और यह आज भोर का स्वप्न
घटा कैसे संयोग विचित्र।
अभी तक घूम रहा है स्पष्ट
सामने नयनों के वह चित्र॥
'जा रही मै पूजा के हेतु
हाथ मे थी सुमनों की माल।
द्वार से मन्दिर करू प्रवेश
कि ठिठकी विस्मित सी तत्काल॥
यशी 'शास्त्री जी' खड़े समक्ष
गौर, लघुकाय, प्रशस्त ललाट।
दीप्त मुखमण्डल, सादा वेश
सहज मुस्मिति, व्यक्तित्व विराट॥

एक मोहक विनीत सारल्य
एक स्वाभाविक सा विश्वास ।
एक मंगलमय आश्रय स्वस्थ
एक आकर्षण दिव्य विकास ?
हुई मैं किंकर्तव्य विमूढ
अचानक उठो हाथ की माल ।
मुग्ध तन्मय सी सुधि—बुधि भूल
उन्हे पहना दी ज्यो जयमाल ॥
उन्होंने भी हँस मुझको एक
किया नव पुष्पस्तवक प्रदान ।
विहँसती थो आगे शिवमूर्ति
बरसता इन्दु रजत बरदान ॥
तभी सहसा ही टूटी नीद
कहाँ था वह स्वाप्निल संसार ।
भोर सपने मे शायद स्वप्न
सीखता है होना साकार ॥
"बरा अब एक बार जब नाथ
ईश से विनती बारम्बार ।
बने, हे कामद शालिग्राम
स्वप्न जीवन का सत्य अपार ॥
शील ने छीने मुख के बोल
न जाने परिजन मन की बात ।
तुम्ही तक मेरी गति सर्वज्ञ !
मनोरथ पूर्ण करो अभिजात" ॥

जगा इस भाँति पूर्व ही राग
कली मे जैसे मृदुल पराग ।
रहा पलता पल—पल अनुराग
बूँद मे जैसे रम्य तडाग ।।
यदपि माँ कौशिल्या अनुकूल
किन्तु प्रिय भैय्या थे प्रतिकूल ।
कभी आशा के खिलते फूल
निराशा कभी उडाती धूल ।।
पिता को बचपन में ही छीन
चूँकि ले गया रहा विधि-क्रूर ।
अत: गृह—सचालन का भार
निहित भैय्या मे था भरपूर ।।
उन्हें ही यह सम्बन्ध अमान्य
विवश ललिता चिन्ता साकार ।
हुई आशका गहन क्रमात्
हिली विश्वास—नाव मँझधार ।।
न भैय्या की मति, शालिग्राम
रच की फेर सके, अनुमान ।
डूबते आतम मनोरथ सग
डुबो देती जल मे भगवान ।।
उधर परिजन परमुखी प्रयत्न
खोजते रहे सुखद सम्बन्ध ।
किन्तु बनता व्यवधान दहेज
लोभ—लालच का शोध प्रबन्ध ।।

ब्याह, दो आत्माओं का मेल
एक सामाजिक धर्म विधान ।
अनवरत चले मानवी सृष्टि
वासना को मर्यादा—दान ॥
पृथक नर—नारी यहाँ अपूर्ण
चुनौतीमय पग—पग संसार ।
ब्याह पूरकता का चिर योग
सरल हो जाती हर ललकार ॥
पारिवारिक जितने सम्बन्ध
ब्याह ही उन सबका आधार ।
रक्त का नाता सहज सशक्त
विविध अनुरागों का भंडार ॥
मधुर बन्धन, प्राणों का हास,
ब्याह रसमय जीवन का स्रोत ।
सृष्टि का सुन्दरतम संगीत
सुखों का स्वर्णिम किरण उदोत ॥
मनुज की निजता का विस्तार
समन्वय, अनुकूलन की शक्ति ।
ब्याह हित का अनुभूत प्रयोग
विविध दायित्वों की सम्पृक्ति ॥
सरलतम रही ब्याह की रीति
जटिलतम वही समस्या आज ।
विकृति बन उभरा बीच दहेज
ब्याह की चिन्ता ग्रस्त समाज ॥

प्रथम भी यह दहेज था किन्तु
स्वेच्छया गया दान का रूप।
आज वह चिंतित परवश दान
अस्वीकृत खाई, स्वीकृत कूप॥
बनीं कन्यायें कुल—परिताप
हन्त! धिक्! धिक् दहेज की रीति।
तरसते पावन कन्या दान
रो रही सम्बन्धों की प्रीति॥
चढ़ेगा क्या न माँग सिन्दूर
करेंगे कैसे पीले हाथ।
दिया था कन्या यदि परिवार
ईश! तो धन भी देना साथ॥
पिता—माता की चिन्ता देख
कहीं कन्या ही खोती प्राण।
ब्याहता सहते जाता सूख
कड़ी तानों के क्षण—क्षण बाण॥
छिपे अगणित कलियों के हास
बुझे अगणित हा! मृदुल पराग।
पड़े निष्ठुर दहेज के पाश
कलपते अगणित हो अनुराग॥
हाय रे! कन्याओं के भाग्य
कहीं सूने किंवा अनमेल।
बिगाड़ा इस दहेज ने चाव
भावना के उजड़े सब खेल॥

भले हो कन्या सुघर, सुशील
गुणी, गृहकार्य—कुशल सविवेक ।
किन्तु यदि देने को न दहेज
व्यर्थ सब गुण, धन ही गुण एक ॥
दनुज जागा दहेज का आज
मनुज का सोया विमल विचार ।
ब्याह बन गया एक व्यापार
वरों की बोली के बाजार ॥
विकृत सामाजिक दृष्टि दहेज
लोभ का कहीं न अन्तिम अंक ।
अमंगलकर अभिशप्त कुरीति
ब्याह के माथे एक कलंक ॥
रहे जबड़े दहेज के फल
भयावह होता जाता रूप ।
खड़ा हो शिक्षित तरुण समाज
तभी सँवरेगा सहज स्वरूप ॥
तरुण शास्त्री जी ने आदर्श
रखा, जब चली ब्याह की बात ।
बताया माँ से निज संकल्प
न किंचित ले दहेज कुख्यात ॥
किया माँ ने सुख से स्वीकार
हृदय में हुआ न किंचित् क्षोभ ।
सरल, सेवी, गुणवती, सुशील
बहू ही उस माँ का था लोभ ॥

मुदित ललिता के भैय्या आज
मिला यह शुभ सम्बन्ध समान
किसी ने चाहा तक न दहेज
दिया द्वारे आदर सम्मान ।
धन्य इन माँ—सुत के व्यवहार
सरल, निष्कपट, उदात्त विचार ।
इन्हें मानव की सच्ची चाह
धनी मानवता का परिवार ।।
दृष्टि—पथ में यह घर था पूर्व
भटकता किन्तु रहा अभिमान ।
दिखा हर धनिक धुनिक के रूप
सुनाता सुनता धन-धुन—तान ।।
जहाँ हो धन मानव से श्रेष्ठ
जहाँ धन ही केवल गुणगान ।
न समुचित उस कुल से सम्बन्ध
आज यह सत्य सका मैं जान ।।
भ्रान्ति बन जाती भारी भूल
किसी लोभी से होता योग ।
विवश हो देते बहुत दहेज
किन्तु क्या वैभव ही सुख-भोग ।।
अन्ततः आर्द्र हुए भगवान
बना अभिलाषित यशी सम्बन्ध ।
सुखी ललिता भी माँ के संग
जगी सोने मे सहज सुगन्ध ।।

और फिर रामनगर से चेत--
गंज आई सज—धज बारात ।
उमंगों के पुष्कर मे भव्य
खिली स्वागत—कलिका जलजात ।।
द्वार पर पल्लव बन्दनवार
शिरोरेखांकित मंगल अंक ।
रूप आलेखित चित्रित भित्ति
कला की कल कटाक्ष सी बक ।।
झंडियाँ रंग—बिरंगी मंजु
पुलक सी प्रकट मनाती मोद ।
वरद कर जैसा तना वितान
चहल से भरी पहल की गोद ।।
मांगलिक ध्वनि मंजूषा खोल
गूंजते शहनाई के बोल ।
नारियों के मृदु मंगल गीत
लहर मे रहे सुधा सी घोल ।।
खुले आँगन मे मंत्रोच्चार
द्वित्व के एकभूत आसन्न ।
लग्न शुभ, सु-रीतियों के मध्य
हुआ विधिवत् विवाह सम्पन्न ।।
बराती हर प्रकार संतुष्ट
हृदय से सराहते सु—प्रबन्ध ।
विदा का आया करुण प्रसंग
स्नेह ममता के फूटे बन्ध ।।

लालमनि दुख प्रतिमा साकार
छूटता बचपन का ससार
जगी संस्मृतियां कोटि हजार
पराया आज वही घर—द्वार।
अश्रु के झरते मुक्त प्रपात
रुदन का उमड़ा पारावार।
सिसकियों में विछोह की बाढ
हिचकियो भरी व्यथा सुकुमार ।।
दुखी जननी की करुण पुकार
दुखी भैय्या का स्नेह—दुलार।
ज्ञातियो के जल पूरित नेत्र
विलखता सखियो का संसार ।।
वायु का बढ़ा ताप संताप
व्यथा से सूखे वन्दनवार।
शून्य से सूने आँगन—द्वार
भरी—उभरी वेदना अपार ।।
विदा माता की ममता आज
विदा सखियों की प्रेमिल कोर।
चली मिर्जापुर की कल—कीर्ति
विदा हो रामनगर की ओर ।।
वधू जा पहुँची अपने द्वार
भरा घर, अन्तर का ससार।
सास के सुख का ओर न छोर
लालसा हुई आज साकार ।।

उदित आशा की मोहक ज्योति
तरसते नयनो की परितृप्ति ।
अकेलेपन की भरी विभूति
बीतते जीवन की आश्वस्ति ॥
और, शास्त्री जी को नव शक्ति
मिली गृह–चिन्ताओ से मुक्ति ।
साथ मां की चिर इच्छा-पूर्ति
सहज सेवा की सुन्दर युक्ति ॥
नये जीवन में दम्पति मग्न
भरे उल्लास, हास, नव भाव ।
मनोरम राग–रंग के बीच
खेलते चाव भरे मधु हाव ॥
सांझ के अग–अग आलस्य
निशा के नयनो में उन्माद ।
भोर की पलको पर मधु स्वप्न
दिवस के अधर मौन संवाद ॥
मधुर जीवन के उपवन मध्य
नित्य नव खिलते प्रेम प्रसून ।
लुटाते तृप्ति सुरभि सभार
सौख्य–मकरद दिनोदिन दून ॥
प्रणय का एक नवल ससार
नही कोई दो के अतिरिक्त ।
जहाँ युग में पल की अनुभूति
और हर पल मधुरिम रस सिक्त ॥

भाव मे भूला, भरा अभाव
परस्पर - स्वय परस्पर - पूर्ति
सुखी दाम्पत्य, शक्ति का स्रोत
एक यदि सम्बल अपर-स्फूर्ति
एक दिन लौटे माँ के संग
चढा गगा मे पियरी आदि
'प्रिये' हँस बोले पा एकान्त
भला माँगा था कुछ वर आदि।
आप को पाकर अब क्या चाह
कहा था मन मे बारम्बार।
अमर माँ ! मेरा रहे सुहाग
बहे जब तक यह पावन धार ॥
किन्तु मैने तो मांगा भक्ति
राष्ट्र के प्रति निस्पृह अनुरक्ति।
करे हम दोनों ही निर्बाध
देश—सेवा सदैव आशक्ति ॥
प्रिये ! सेवा मेरा पथ श्रेय
आत्म सुख ही मेरा पाथेय।
यहीं मेरे जीवन का ध्येय
नही लौकिक सुख मेरा प्रेय ॥
आत्म सतोष महत्तम वित्त
साधना का अमूल्य बरदान।
विविध यद्यपि शारीरिक कष्ट
किन्तु मन का स्वर्णिम उत्थान।

तुम्हारे मेरे जीवन संग
बँधे हैं अपने सुख दुख क्लेश ।
हमारा आपस पर अधिकार
किन्तु हमसे भी ऊपर देश ।।
व्यष्टि से व्यापक सदा समष्टि
प्रथम हम पर उसका वर्चस्व ।
शुभे ! दो मुझे शक्ति सहयोग
कि उस पर वार सकू सर्वस्व ।।"
"जानती भली भांति मैं नाथ!
आपको पाकर हुई कृतार्थं ।
पुरुष की अनुगामिनी सदैव
इसी मे नारी का परमार्थं ।।
आपका रहे राष्ट्र आराध्य
आप मेरे मन के हों इष्ट ।
देश सेवी हो मेरे देव
सेविका इन चरणो में तुष्ट ।।"
"सेविका नहीं, बनो तुम शक्ति
सुप्त जीवन को कनक विहान ।
निराशा मे आशा की ज्योति
प्रेरणा की गरिमा गुंजान ।।"
"किन्तु नारी है अबला मात्र
न मैं इन स्वप्नो के अनुकूल ।
तदपि विश्वास करें प्राणेश
न हूंगी पथ-बाधा प्रतिकूल ।।

भार घर का मेरा दायित्व
अकिंचनता मे भी सुख मान।
पूज्य मां की सेवा अविराम
करुंगी तन मन से अम्लान ।।"
"मुझे तुम पर पूरा विश्वास
न मेरी आशा मात्र प्रलाप।
कभी देखेगा निकट भविष्य
तुम्हारे सेवा कार्य-कलाप ।।
बनोगी तुम मेरी सम्पूर्ति
देश देखेगा नव अध्याय
कहेगी घूम—घूमकर कीर्ति
तुम्हें युग—सेवा-मूर्ति सकाय ।।"
"चाटकारी का कब से रोग
आपको लगा भला हे नाथ।"
"प्रियतमे ! जब से गुण सौन्दर्य
तुम्हारा लगा हमारे हाथ ।।"
"और वह कैसा था परिहास
न भूले होगे महानुभाव।
प्रतिज्ञा—वचनों की पुनरुक्ति
वधू-बर-मुख होने का चाव ।।
किया था रच न क्यो सुविचार
सकेगी यह कैसे मुख खोल।"
टाल हंस बोले "वह तो ब्याज
तुम्हारे सुनने थे दो बोल ।।"

"नही जी धाक जमाने हेतु
प्रदर्शन साहस का था स्यात् ।
या कि सत्याग्रह पूर्वाभ्यास"
कही हंस ललिता ने यह बात ॥
'वहाँ की बात, प्रिये! था और
यहाँ तो सब सत्याग्रह व्यर्थ ।"
"नाथ! जब अपनो तक मे व्यर्थ
विदेशी के प्रति फिरक्या अर्थ ॥"
"हसी ही हसी उठाया एक
शुभे! तुमने यह युग का प्रश्न ।
अहिंसात्मक आंदोलन आज
कोटि मानस का शंका प्रश्न ॥
खडी दोराहे पर जन—शक्ति
समाकुल चिंतित किंकर्तव्य ।
अहिंसा हिंसा के दो मार्ग
किधर से साधनीय गन्तव्य ॥
जहाँ तक मेरा मत विश्वास
अहिंसा का पथ श्रेष्ठ नितान्त ।
अहिंसा मानवता की ज्योति
हमारी सस्कृति का वृत्तान्त ॥
हमारी विजय इसी के मूल
एक दिन होगा पथ अनुकूल ।
अहिंसा—उपवन के ही क्रोड
खिलेगा स्वतन्त्रता का फूल ॥

"आपकी यह भावुकता मात्र
न पूरा होगा इससे लक्ष्य ।
अपेक्षित स्वतन्त्रता को शक्ति
मुक्ति इतिवृत्त साक्ष्य प्रत्यक्ष ।।"
"किन्तु भावुकता भी तो शक्ति
इसी की गोद पले बलिदान ।
अहिंसा में वह नैतिक शक्ति
विनत नाना भौतिक बल-मान ।।"
"नाथ! ये सब स्वर्णिम आदर्श
विलग व्यवहार जगत की बात ।
अहिंसा यहाँ विवशता बोध
चन्द्रिकाहीन अमा की रात ।।
अहिंसा शक्तिमान का हार
अशक्तों मे कायरता दोष ।
अहिंसा जो अशोक की ख्याति
बनी साम्राज्य हेतु परिशोष ।।
व्यष्टि के लिए अहिंसा ठीक
किन्तु जब राजनीति का क्षेत्र ।
प्रबल सत्ता से हो सघर्ष
लौह दृढ काम्य नही मृदु वेत्र ।।
और, नैतिकता की मत बात
करे इन आततायियो हेतु ।
'शठे शाठ्य' से ही संभाव्य
टूटना अनय—प्रशासन सेतु ।।'

"तुम्हे शायद प्रिय क्रान्ति सशस्त्र
परिस्थिति का, पर, करो विचार।
अल्पतम साधन, उधर विशाल
सफलता क्या हत्या दो–चार ।।
एक के बदले दमन अपार
गुप्त जीवन, अभिसन्धि हजार ।
चोर—डाकू के से व्यवहार
अधम साधन औ मुक्ति विचार ।।"
"किन्तु सत्ता इससे भयभीत"
"प्रिये! कब तक? सोचो तो रच।
दमन का चक्र निरन्तर तीव्र
एक दिन रिक्त दिखेगा मंच ।।
दमन, स्वामी ! जितना ही तीव्र
क्रांति का उतना तीव्र उभार।
जलती दीप—शिखा, प्राणेश!
तदपि बढते ही शलभ अपार ।।
और फिर मुट्ठी भर अंग्रेज
उठा है इधर शक्ति का ज्वार ।
सकेंगे आखिर कब तक झेल
हमारा बलिदानी त्योहार ।।
बुद्धि–संचालिन, ललिते ! राज्य
न सचित संख्या मे है शक्ति ।
एकता और सगठन काम्य
तभी कुछ सार्थक होगी भक्ति ।।

शहीदो से मुझको भी राग
और उनका साहस भी स्तुत्य ।
स्वर्ण शब्दो मे नव इतिहास
लिखेगा उनके पावन कृत्य ॥
किन्तु है जहाँ मुक्ति का प्रश्न
अहिंसा-पथ ही अनुकरणीय ।
सर्वथा श्रेष्ठ हमारा साध्य
श्रेष्ठ साधन ही आचरणीय ॥
अहिंसात्मक आन्दोलन आत्म-
विवशता नही, न ही कादर्य ।
पूज्य गाँधी जी की यह युक्ति
प्राच्य सस्कृति का नव सौन्दर्य ॥
शान्त सत्याग्रहियो को जेल
निहत्थो पर लाठी-बारूद ।
विदेशी शासन-घट मे पाप
नित्य बढ रहा सूद पर सूद ॥
दमन का यह मथन उद्दाम
जागरण की लहरे उत्ताल ।
विलोडित क्षुब्ध प्रबल जन-सिन्धु
एक दिन प्राप्य मुक्ति-कीलाल ॥"
"नाथ! हम सत्वर होगे मुक्त
अहिंसा—छाया मे दिन एक ।
प्रथम पद जैसे व्याहृति गीत
रहेगी किन्तु क्रान्ति की टेक ॥

जलेंगे उस दिन घृत के दीप
सुखी होगा स्वाधीन स्वदेश ।
हँसेगी भारत माता मुक्त
सजेगा स्वर्णिम गौरव वेश ।।

मुक्त देश की कल्पना, दम्पति भाव — विभोर ।
व्योम देख कादम्बिनी, नाच उठे ज्यों मोर ।।

रसा अपनी, गगन अपना,
दिशा अपनी, पवन अपना,
निशा अपनी, दिवस अपना,
उषा अपनी, उदधि अपना ।
अहा! कितना मधुर सपना ।।

नगर अपने, प्रहर अपने,
कमल अपने, कुमुद अपने,
अचल अपने, सचल अपने,
विभव अपने, विज्ञन अपने ।
अहा! कितने मधुर सपने ।।

नाथ! स्वप्न ये सत्य न जाने कब हो ।
लगता है, स्वाधीन आज ही अब हो ।।
प्रिये! कहाँ वश? दैव विधान चला है ।
ऋतु आये ही सदा रसाल फला है ।।

## प्रयत्न (चौथा सर्ग)

पराधीन यह देश हो गया जब से
जगे अशिव नक्षत्र हमारे तब से ।।
रही न यद्यपि विलासिता सुल्तानी ।
तदपि भोग आलस्य वृत्ति मनमानी ।।
और राज्य यह आंग्ल अमंगलकारी ।
भारत का धन धर्म ज्ञान आहारी ।।
यहाँ आधुनिक औरस सृष्टि रचाता ।
बना हाय! हम सबका भाग्यविधाता ।।
लड़ता रहा निरन्तर अविचल भारत ।
रहा चुकाता मोल भूल का भारत ।।
शब्द चित्र यह एक उसी क्रम का है
स्वर जिसमे राष्ट्रीय जागरण का है ।।
द्वीप पार कारा मे भारत माता ।
कोटि-कोटि सन्तान, सिसकता नाता ।।
बनी वन्दिनी हाय! विलखती रहती ।
नित्य बिविध अपमान यातना सहती ।।
बिखरे केश नयन गीले कृश काया ।
लगती वह अपनी ही उन्मन छाया ।।
जब कब मुक्ति प्रयत्न जगाते आशा ।
उठती होगी राशि-राशि अभिलाषा ।।
स्यात् तभी कुछ हास मलिन अधरो पर ।
ज्यो विद्युत आलोक श्याम मुदिरो पर ।।
अन्यथा व्यथा से भरा वही जीवन ।
व्रीडा से परिशिथिल तिरस्कृत जीवन ।।

उस पर ये सत्तान्ध लालची गोरे ।
भौतिकवादी मानवता से कोरे ॥
करते अत्याचार नित्य मनमानी ।
जागी फिर से रावण-कंस-कहानी ॥
पाकर कनक समूल तुच्छ बौराये ।
होते गये सघन शोषण के साये ॥
एक-एक कर खोयीं निधिया सारी ।
कनक देश की मिटी विभूति हमारी ॥
डूब गया सुख का मँझधार किनारा ।
छूट गया हाथो से आत्म सहारा ॥
दूध और घी की सूखी वह धारा ;
जग सोने का माटी हुआ हमारा ॥
खुले नई शिक्षा के कपट उजाले ।
भारतीय प्रतिभा पर मानो ताले ॥
चली दासता के सांचे सी शिक्षा ।
जन जीवन से दूर परायी भिक्षा ॥
लगी ढालने भौतिक दास निरन्तर ।
चर्म असित, गोरी प्रबृत्ति अभ्यन्तर ॥
निज संस्कृति की होती नित अवहेला ।
धर्म हुआ पाखण्ड, विकार, झमेला ॥
लुप्त हुई मरुपथ मे गौरव-धारा ।
घोर निराशा का छाया अँधियारा ॥
स्वाभिमान ही नही रहा जब मन में ।
कैसे रहती शक्ति जीवनी जन मे ॥

जीवित ही मृत से हम भारतवासी ।
मानो निज घर मे ही बने प्रवासी ।।
खा-खा मीठी आत्म विस्मरण बटिका ।
भारतीयता सोयी गिरी यवनिका ।।
मान, प्रतिष्ठा, स्वाभिमान का भारत ।
कहां! हाय वह आज हमारा भारत ।।
धर्म नही सत्कर्म नही मानवता ।
कहाँ साधना, आत्म ज्ञान नैतिकता ।।
सोने के वे दिवस, रुपहली राते ।
क्या भारत की नही और की बाते ।।
सब कुछ ही तो बदल गया लगता है ।
पराधीनता जो न करे थोड़ा है ।।
पराधीनता बिडम्बना संसृति की ।
पराधीनता पतन-प्रक्रिया गति की ।।
पराधीनता दुर्दिन भाग्य-गगन मे ।
पराधीनता मरण-तुल्य जीवन मे ।।
अवनति का आख्यान इसी की माया ।
करुण विवशता एक इसी की छाया ।।
नयनों को यह नयन न आँसू कहती ।
यह शोषण, अन्याय, दमन की धरती ।।
कितने इसमें दुःख-प्रवाह उमड़ते
खिले-अनखिले सुमन असख्य झुलसते ।
जहां-जहाँ है पड़ती इसकी छाया ।
नरक वही बस जाता बना बनाया ।।

सर्वनाशिनी पिशाचिनी यह भारी ।
दुर्गति ही कर डाली हाय! हमारी ।।
इस मायाविनि सेकब मुक्ति मिलेगी ?
कब माँ के मुख पर मुस्कान खिलेगी?
सोच-सोच यह शास्त्री जी दुःख पाते ।
देख-देख दुर्दशा नयन भर आते ।।
कभी रोष से अंग फड़कने लगते ।
चिनगारी के राख-आवरण हटते ।।
पल में झीना नया आवरण चढता ।
क्षणिक विवशता-बोध शून्य मे बढ़ता ।।
क्रान्ति विहीन नयन नत भारतवासी ।
हर आनन पर छायी सतत उदासी ।।
राशि-राशि पीड़ा की चेतन काया ।
हर जीवन लगता जीवन की छाया ।।
जलती ज्योति रहित जीवन की बाती ।
रोती कब से स्वाभिमान की छाती ।।
सबको अपनी - अपनी यहाँ पडी रे ।
तम ओढे जन-जागृति मौन खड़ी रे ।।
तभी लिये सन्देश स्वर्ण किरणो का ।
कुछ आगे बढ चला चाप चरणो का ।।
क्रान्ति शान्ति युग तूर्य मुक्ति के घहरे ।
चले चरण गति भरे पथ कब ठहरे ।।
दिवस देश के फिरे, तिमिर-पट उघरे ।
राष्ट्र चेतना के स्वर उर-उर उभरे ।।

जगी क्षितिज पर जो ऊषा की लाली ।
बढ-बढ भरने लगी ज्योति की डाली ।।

अपमानो के घूंट उधर नित्य पी-पी ।
जनने मोती लगी चेतना - सीपी ।।

श्याम, धींगरा, क्रान्तिवीर चाफेकर ।
खुदी राम, शचि, क्रान्तिदूत सावरकर ।।

रचा इन्होने वह बलिदानी मेला ।
प्राणो का प्रिय खेल कान्ति ने खेला ।।

क्रान्तिमना तो रक्त बीज से होते ।
जल-जल अगणित रक्त प्रदीप सँजोते ।।

हस-हँस ये बलिवेदी पर चढ़ जाते ।
एक देश बस,व्यर्थ और सब नाते ।।

भावभूमि बनती परम्परा इनकी ।
जग जाती है भक्ति शक्ति जनमन की ।।

जाग उठे कुछ-कुछ जो सोने वाले ।
सोते रहे घरो मे चाँदी वाले ।।

नई, लिये कांग्रेस दिशा की गागर ।
भरने लगी स्वदेश-प्रेम का सागर ।।

तिलक, पाल, अरविन्द, राय, नौरोजी ।
मालवीय, गोखले, फिरोज, बनर्जी ।।

गरम-नरम दल दण्ड साम से झलके ।
सूर्य-चन्द्र बन राष्ट्र-गगन में चमके ।।

फिर विसेण्ट का 'होमरूल' आन्दोलन ।
उभरा जैसे नया एक मूल्यांकन ।।

आशा-कलिका ने हँस आखे खोली ।
भरी सुरभि से नवोत्साह की झोली ॥
ले सन्देश पवन घर-घर फिर दौडा ।
शनै -शनै सगठन हुआ कुछ चौड़ा ॥
शका से भर उठी विदेशी सत्ता ।
लगी चौकने गौराङ्गीय महत्ता ॥
लिये तभी नव वेणु अहिंसा कर मे ।
मोहन उतरे कर्मचन्द्र से नर मे ॥
प्राण-प्राण मे गाँधी का स्वर छाया ।
असहयोग आन्दोलन का युग आया ॥
उमडी व्यापक वहिष्कार की धारा ।
घूमा घर-घर चक्र स्वदेशी नारा ॥
क्रान्तिमना चुपचाप देखते भावी ।
कैसे होगी नीति सहिष्णु प्रभावी ?
लाठी, गोली, जेल अहिंसक पाते ।
देख खौलता रक्त रक्त के नाते ॥
देश भक्ति का ज्वार उमडता आता ।
सत्ताधारी को विरोध कब भाता ॥
रौलट-ज्वाला उठी दमन की भीषण ।
किये यातना ने असख्य अन्वेषण ॥
दारुण अत्याचार, प्रतिष्ठा शोषण ।
एक-एक कण पर जैसे सौ-सौ व्रण ॥
हत्याकाण्ड नृशस 'जालियाँ वाला' ।
भलेगा क्या वह 'मार्शल ला' काला ॥

शासन की बर्बरता करुण कहानी ।
मानवता के नयन बहाते पानी ।।
अर्थ राजमद होता कितना भारी ।
दब जाती है सदप्रवृत्तियाँ सारी ।।
न्याय सदासद का विवेक सो जाता ।
स्वार्थ-चक्र मे फँस मानव खो जाता ।।
युद्ध-पूर्व के कहाँ आँग्ल-आश्वासन ।
बदले मे ये कहा दश-रत विष-फन ।।
भूल हमारी विश्व युद्ध मे जूझे ।
नीति अधम की मात्र अधम ही बूझे ।।
सर्प-प्रकृति कब बदली दूध पिलाये ।
मन्त्र-युक्ति-बल से ही वह वश आये ।।
क्रांतिमना कब तक चुप रहते ऐसे ।
लगे चुकाने चुन-चुन बदला उनसे ।।
भगत सिंह आजाद सदृश बलिदानी ।
जन आकाँक्षा के स्वरूप सेनानी ।।
अमर रहेगी उनकी क्रान्ति-कहानी ।
जल-जल खौला दिया देश का पानी ।।
कांग्रेसी खेमे में गर्मी आई ।
आश्वासन के भ्रम की बिखरी काई ।।
रावी की चालीस कोटि लहरो मे ।
लहर उठा उद्‌घोष सशक्त स्वरो मे ।।
नही चाहिये स्वाधीनता अधूरी ।
स्वतन्त्रता अविलम्ब चाहिये पूरी ।।

इन शब्दो के साथ सजी अभिलाषा ।
आन्दोलन को मिली सबल परिभाषा ॥
पुण्य तिरगा 'नेहरू' ने फहराया ।
जन-जन का प्रण पवन-पवन लहराया ॥
शास्त्री जी ने नभ की ओर निहारा ।
बही नयन से सुख की गगा धारा ॥
गाधी, नेहरू ने देखा पहचाना ।
उठते उर के भाव दृष्टि ने जाना ॥
साँकेतिक वह भाषा चार नयन की ।
मौन पढ गयी भावी तरल नयन की ॥
उधर तिरगा लहर-लहर लहराता ।
अखिल देश को नव सन्देश सुनाता ॥
उद्वेलित नभ, पवन घूमता जाता ।
गात-गात सम्बल नवनीत जगाता ॥
प्राण-प्राण मे भरता सात्विक स्पदन ।
चला अवज्ञा का सविनय आन्दोलन ॥
प्रबल स्वदेशी की भावना समायी ।
विलायती की होली गयी जलायी ॥
सत्याग्रह मे भाग नारियाँ लेती ।
मद्य-वस्त्र पण्यो पर धरना देती ॥
एक दिवस शास्त्री—गृह 'कमला' आयी ।
दशा देख घर की आँखे भर आयी ॥
दिखी अकिंचनता की छिपती छाया ।
भासित थी पर पूर्ण तृप्ति की माया ॥

था अभाव में भाव साधना करता ।
धन्य त्याग जो दीन गृहो मे पलता ।।
देश-प्रेम-हित यह कुटुम्ब सब सहता।
रूप निखरता कन्चन जितना कसता ।।
भरा-भरा क्या नही यही घर होता ।
स्वार्थ-चक्र में फँसा कही यदि होता ।।
निज समृद्धि तो साधारण की इच्छा ।
महत जनो की बनती वही परीक्षा ।।
निजता से ऊपर वे उठते जाते ।
पग-पग पर सुदर ससार बसाते ।।
तब तक माँ हँस बोलीं "भाग्य हमारे ।
हुए आज ये पावन कक्ष हमारे ।।"
"नही, नही माँ स्वय धन्य हूँ यह मै ।
करके दर्शन आज कृतार्थ हुई मैं ।।
कुछ अभिलाषा लिये आप तक आई।"
"कमला को क्या कमी करे न हँसाई।
फिर भी आशय अपना आप बताये ।"
"मात यही बस हमे राह दिखलाये ।।
क्रान्ति यज्ञ की प्रबल उठ रही आंधी।
नारी का सहयोग चाहते गाँधी ।।
क्या कर्तव्य युगीन आपके मत मे ?"
"समझी मै जो छिपा प्रश्न के तल मे ।।
बचवा ने उस दिन सकेत किया था ।
हँसकर उसको मैने टाल दिया था ।।"

"किंतु हँसी मे टाल न सकनी मुझको ।"
"नेहरू कुल का हठ न विदित है किसको ।।?
बेटी अब मै स्वय न टाल सकूँगी ।
पुत्र दिया है पुत्र-वधू भी दूंगी ।।
वह स्वदेश के लिए सतत् दीवाना ।
क्यो न बहू का हो वैसा ही बाना ।।"
कहा बहू ने-"किन्तु श्रेय यह किसका?"
कमला बोली-"बहू और सुत जिसका।"
इस प्रकार ललिता भी बाहर आयी ।
नई शक्ति सेविका सघ ने पायी ।।
स्वय सेविकाओ के सँग नित जाती ।
विलायती—क्रेताओ को समझाती ।।
उन पण्यो पर क्रय-विक्रय क्या होते ।
विलायती पण्येश भाग्य पर रोते ।।
एक दिवस पण्येश एक क्रुद्ध बोला ।
"ललिता जी यह ढोग भला क्या खोला ।।
स्वय हाथ मे पहनी वलय विदेशी ।
रोक दूसरो को दे सीख स्वदेशी ।।"
"बन्धु न ज्ञात हमें ये वलय विदेशी ।
किन्तु तुम्हारी भी तो घडी न देशी ।।
तुम्ही बताओ पहना इसको क्यो है ?"
"घृणा विदेशी से न मुझे तुमको है ।।
ढोग नही तो वलय तोड दे अपनी ।"
"तुम भी दोगे फोड़ घड़ी क्या अपनी?"

"हा, परन्तु पहले तोडे इन सबको ।
ये सुहाग-सकेत, जान लू सच को ।।"
क्षण भर ललिता ने विचार कर मन मे ।
चोटी के दो डोरे बाँधे कर मे ।।
और उठा गज वलय तोड दी सारी ।
बोल उठा पण्येश "धन्य तुम नारी ।।
बहन! क्षमा दो, भूल हुई हा भारी ।
भ्राति मिटी, आँखे खुल गईं हमारी ।।
फोड रहा यह घडी विदेशी अपनी ।
आज स्वदेशी रक्त—सचरित धमनी ।।
शपथ, विदेशी अब न कभी बेचूँगा ।
शपथ स्वदेशी सतत् प्रचार करूँगा ।।"
यह कह फोड़ी घड़ी, स्वपण्य जलाया ।
धन्य-धन्य कह कण्ठ कण्ठ भर आया ।
सुन शास्त्री जी ने पण्येश सराहा ।
घर आ कहा, "शुभे! कर्त्तव्य निबाहा ।।"
"नाथ! वलय तोड़ना अमगलकारी ।"
"नही प्रिये! सबसे स्वदेश हित भारी ।।"
भार हुआ कम मेरे अन्तर्यामी ।
अब चुनाव परिणाम बताये, स्वामी ।।
"जिला समिति को जाने क्या यह भाया ।
मात्र सचिव था, अब अध्यक्ष बनाया ।
बढ़ता अनुदिन दायित्वों का मेला ।
यह सब कैसे होगा मुझसे झेला ।।

चाहा मैंने था कि सचिव ही रहता ।
योग्य कहाँ इस पद के, मेरी क्षमता ॥"

"हर उदार मानव ऐसा ही कहता ।
भरा सलिल-घट कभी न छलका करता ॥

नाथ ! आपकी यही विशिष्ट महत्ता ।
कार्य जगत की होती नही इयत्ता ॥

कर्मसु कौशल योग आचरण जिसका ।
क्यो न बढे दायित्व-क्षेत्र नित उसका ॥

क्षमता को दायित्व जगाया करते ।
सिंधु तभी बजरंगी लाँघा करते ॥

बदन बढाती ज्यों-ज्यों सुरसा क्षमता ।
कपि-दायित्व तथावत जाता बढता ॥

वृद्धि और अभिवृद्धि-एक क्षण आता ।
लघु होता दायित्व धनी यश पाता ॥"

'किंतु नही यश काम्य मुझे जन सेवा ।
मुक्त बहे बस अपनी गंगा रेवा ॥

लघु हू लघुता ही प्रिय मुझे न प्रभुता ।
यदि कोई प्रिय और एक तुम ललिता ॥

प्रिये ! बताओ तुम भी अपनी प्रियता ।"
"नाथ ! आपकी दोनो लघुता-प्रभुता ॥

लघुता मे ही तो यथार्थतः प्रभुता ।
शतपद-सिंधुर दोनों ही सिर सिकता ॥"

इसी तरह दम्पति मे होती बातें ।
दिवस देश के और राष्ट्र की राते ॥

नहीं स्वार्थ का लेश, सगठन प्यारा ।
शत प्रदक्षिणा, एक केन्द्र ध्रुव तारा ।।

वह कर्मठ सगठन—कुशलता उनकी
उन जैसी निष्पाप सरलता किनकी ।।

घोर संकटों में भी नित अपराजित ।
मानवता से जीवन पूर्ण समाहित ।।

अकथनीय उस दम्पति की हर गाथा ।
आगे उनके विनत स्वय ही माथा ।।

आर्थिक संकट झेलते, अगणित कारावास ।
भूल सकेगे युग कहीं, उनके मुक्ति प्रयास ?

जो करता पाने की आशा ।
उसका जीवन एक निराशा ।।
जीवन पाने हेतु नही है ।
देना जीवन की परिभाषा ।।

यह जीवन तो एक सनातन ।
बलिदानी त्योहार तपोवन ।।
त्यागमना शास्त्री जी जैसे ।
मानव का ही सार्थक जीवन ।।

स्वाधीनता सग्राम का जो कुशल सेनानी रहा ।
इतिहास के हर पृष्ठ पर अंकित कथा उसकी महा ।।
जनतन्त्र युग मे धन्य उसकी कीर्ति क्षेम संवारती ।
अपना समझ जिसकी सदा जनता उतारे आरती ।।

# कसौटी (पाचवाँ सर्ग)

कठिनाइयाँ वरदान बनती है सफलता के लिए ।
नवशक्ति की ये कुजियाँ संघर्ष मे जय के लिए ।।
सघर्ष से बच राम भी अवतार कहलाते नही ।
रवि रात्रि भर सघर्ष कर आलोक दे पाता कही ।।
आघात खा शत-शत शिला को मान प्रतिमा का मिले ।
हर सौम्यगंधा पुष्प का इतिहास काँटो मे खिले ।।
कठिनाइयो की गोद मे शास्त्री सवरते ही गये ।
वे हर परिस्थिति की परीक्षा मे सफल होते गये ।।
हर ईंट को गरिमा मिली प्रासाद के निर्माण मे ।
है भावना से जागते भगवान भी पाषाण मे ।।
निज देश के प्रति थी हृदय में प्रबल सेवा भावना ।
फिर क्यो न बढती चेतनो मे सगठन की कामना ।।
सब लोग उनकी प्रेरणा पा संगठित होते गए ।
विस्तीर्ण वात्याचक्र मे तिनको सद्रश मिलते गए ।।
इस संगठन से एक महती शक्ति जागी देश मे ।
है ज्वार जल मे किन्तु वह जगता जलधि के क्रोड़ मे ।।
जलयान शासन का हिला इस शक्तिशाली ज्वार मे ।
हर गोलमेजी यत्न भी असफल हुए उपचार मे ।।
तब भीत सत्ता ने बिखेरे मधुर दाने कूट के ।
उस पर बिछाये जालघातक साम्प्रदायिक फूट के ।।
वे हिन्दु, हरिजन सिक्ख, मुस्लिम पृथकवादी नीतियाँ ।
थी एकता की राह में बाधक भयावह भीतियाँ ।।
इस हेतु अनशन आमरण जब पूज्य बापू ने किया ।
तब एकता की डूबती उस नाव का कुछ तट जिया ।।

पूना क्षितिज मे सूर्य चमका आपसी सद्भाव का ।
राष्ट्रीयता के शुष्क अधरो पर खिली अरविंदिका ।।
कुछ राष्ट्रघाती तत्व तो भी फँस गये उस जाल मे
उभरा कलक सजीव जैसे सूर्य के सित भाल मे
संघर्ष की गति पर निरन्तर तीव्रतर होती गई ।
हर जेल शत–शत देशभक्तों से भरी, भरती गई ।।
इस बार भी शास्त्री बने मेहमान कारागार के
अगणित जुटाती यातना साधन सघन सत्कार के ।
था साधना का पुत्र यह हँस–हँस उन्हे स्वीकारता ।
सतोष, श्रम, स्वाध्याय से व्यक्तित्व नित्य निखारता ।।
हर जेल यात्री सग उनका पा सुखी होता रहा ।
हर कर्मचारी जेल का उनसे प्रभावित नित रहा ।।
सुविधा विशिष्ट नही उन्होने स्वय हित चाही कभी ।
जो मिल गया, सतुष्ट उसमें रह नियम पाले सभी ।।
पर अल्प अत्याचार भी उनसे न जाता था सहा ।
सत्याग्रही का पूर्ण दिव्यादर्श था उनमे रहा ।।
स्वाधीनता के स्वप्न अविकल चेतना मे घूमते ।
घर–बार था अवचेतना मे द्वार ही कब टूटते ?
अच्छी नही थी पूर्व ही परिवार की आर्थिक दशा ।
जब मात्र अर्जक, जेल वह भी, सोचिये हा! क्या दशा ?
घी–दूध की क्या बात, मिलती सर्वदा कब रोटियाँ ।
सोती क्षुधातुर हाय! बहुधा फूल सी दो बेटियाँ ।।
सुकुमार मन की लालसाए लालसा हो सो गयी ।
सब कल्पनाएँ एक साधन–हीनता मे खो गयी ।।

जग मे परीक्षाएँ अनेको किन्तु भागी दीनता ।
व्यक्तित्व कितने डूबते जन छलछलाती हीनता ।।
विश्वास सारे डगमगाते व्यर्थ जीवन भासता ।
अनुदिन अभावो का जगत धँस शूल जैसा सालता ।।
कब है सुलभ सम्मान, सुख ससार मे धन के बिना ।
धनहीन के हर हास का मकरन्द खिलते ही छिना ।।
धन के सभी साथी, कुटुम्बी, धनमयी अभिज्ञानता ।
रे, दीन-हीन अकिंचनो को कौन अपना मानता ।।
इस स्वार्थ के ससार मे धनहीन को कब कूल है ।
हर राह की मँझधार है, हर दिशा ही प्रतिकूल है ।।
परिजन अनेको मित्र है पर दीन का कोई नही ।
मधुकर सुमन से हीन वृन्तो पर भला रमते कही?
वह कौन सद्गुण है जिसे धनहीनता हरती नही ?
वह पाप ऐसा कौन जिसको दीन कर सकता नही ?
धनहीन का जीवन जगत मे जागता अभिशाप है ।
चिन्ता-चिता के ताप मे पल-पल पला अनुताप है ।।
बस दीन को अवसाद, पश्चात्ताप और विषाद ही ।
कुछ सार जीने मे नही, अधिकार मरने का न ही ।।
धिक्कार है उस देश को धनहीन के आँसू जहाँ ।
धिक् तन, आश्रयहीन भूखी, नग्न जनता हो जहाँ ।।
कोई समय था, देश मे घी-दूध की नदियाँ बही ।
धन-धान्य से सम्पन्न था, वश मे सकल निधियां रही ।।
हा! किन्तु जब से देश मे परतन्त्रता का विष बढा ।
हर दूध पानी हो गया, घृत का कलश तरु पर चढा ।।

धनहीनता की मूल यह सुख-हारिणी परतंत्रता ।
धिक्कार है उस विश्व को जगती जहा परतन्त्रता ।।
परतन्त्रता को मेटने जो कष्ट सहते धन्य हैं ।
जो हर अधर मुस्कान दे बलिदान वे मूर्धन्य है ।।
ज्यो शूल-शैय्या पर बिहँस मकरद पुष्प बिखेरते ।
त्यो कष्ट सह हँस-हँस मनस्वी भाग्य सबके फेरते ।।
गम्भीर ललिता हर विवशता धैर्य से सहती रही ।
सन्तोष की गाथा नयन की कान्ति नित कहती रही ।।
सामान्य जन को ही यहा धन हीनता है सालती ।
उत्तम प्रकृति को अग्नि-कचन-तुल्य नित्य निखारती ।।
कठिनाइयो मे उच्चता उठ-उठ निखरती है यहाँ ।
गिर-गिर बिखरती पर वहीं, सम्पन्नता होती जहा ।।
संसार के इस चक्र का कैसा विचित्र विधान है ।
विस्तृत हरित गुजन वही मूना प्रकृति परिधान है ।।
धनहीनता मे भी कही सुख की मधुर मुस्कान है ।
सम्पन्नता मे तो कही सुख-शान्ति का अवसान है ।।
सम्पन्नता कब मुख सदा, न विपन्नता दुख-मूल है ।
सुख-दुख अवस्था एक मन की हेतु सूक्ष्म, न स्थूल है ।।
ललिता सुखी थी, लक्ष्य के प्रति अटल उनकी भावना ।
किंचित् नही थी स्वार्थ की विश्वासघाती कामना ।।
सब भूल जाती कष्ट अपने देश को जब देखती ।
व्यापक हितो की भूमि पर अपने हितो को हेरती ।।
फिर बोध देती बेटियो को 'आ रही स्वाधीनता ।
बस तब मिटेगी देश की, सबकी, हमारी दीनता ।।

पूछा कुसुम ने एक दिन मा ! क्या कहाँ स्वाधीनता ?
वह कब मिलेगी और उससे क्यो मिटेगी दीनता ?
"बेटी ! सुनो अंग्रेज-कारागार मे वह बद है ।
सौभाग्य हम सब भारतीयो का इसी से मन्द है ।।
स्वाधीनता का अर्थ है निज देश निज आधीन हो ।
हर उच्च पद पर देशवासी राज्य के आसीन हो ।।
उन्नति प्रगति की योजनाओ मे स्वयं का हाथ हो ।
निज देश का जन-जन सुखी हो लक्ष्य ऐसा साथ हो ।।
अवसर बराबर हो सभी को आपसी सौहार्द्र हो ।
पीडित अकिंचन के लिए नित हर हृदय करुणार्द्र हो ।।
हर व्यक्ति अपने औ पराये के लिए इन्सान हो ।
कुछ हो अभाव भले उन्हे सबके अधर मुस्कान हो ।।
सन्तोष हो विश्वास हो कल पर उन्हे आस्था रहे ।
आँखे नही नीचे झुके , ऊँचा सदा माथा रहे ।।
जब देश का धन देश के भीतर रहे, उत्थान हो ।
सब लोग सुख-दुख बाँट ले, स्वाधीनता वरदान हो ।।
लोभी विदेशी शासको को मोह क्या हमसे भला ।
वे जानते है मात्र शोषण, दमन, पीडन की कला ।।
निज स्वार्थ हितही कर रहे अँग्रेज ये सब काम हैं ।
हर केन्द्र श्रद्धा के हमारे कर दिये बदनाम है ।।
साहित्य, सस्कृति, धर्म सब बासी हमारे हो गये ।
इस पश्चिमी चकचौध मे हीरे हमारे खो गये ।।
उन्मुक्ति हमको मिल सके स्वाधीन अपना देश हो ।
स्वाधीन अपना हित रहे, स्वाधीन अपना वेश हो ।।

बस, इसलिए स्वाधीनता संकल्प जन-जन मे जगा ।
काग्रेस के आन्दोलनो का इसलिए ताँता लगा ॥
ये क्रातिकारी भी पतिगो की तरह जलते यहां ।
चिनगारियाँ स्वाधीनता की ज्योतिरिग जहाँ तहा ॥
अँग्रेज जैसे क्रूर शासक और क्या होगे कही ?
इतिहास मे ऐसे दमन के उद्धरण होगे नही ॥
उत हिंस्र गोरो की निदारुण लाठिया औ गोलियाँ ।
इत है अहिंसक भारतीयो की निहत्थी टोलियाँ ॥
यदि एक को निज पाशविक बल का बड़ा अभिमान है ।
तो दूसरे मे स्वाभिमानी आत्म बल की आन है ॥
यदि एक मे स्वार्थान्धता की दमन कारी शान है ।
तो दूसरे मे देश हित बलिदान-प्रेरक बान है ॥
आग्नेय अस्त्रों से ढँकी इन पल्टनो की वीरता ।
तो सामने है मुस्कराती गीत गाती धीरता ॥
चलती रही वे लाटिया, चलती रही वे गोलिया ।
भुनती रही ये टापिया, बढती रही ये टोलिया ॥
सर पर कफन बाँधे शहीदो की निकलती टोलियां ॥
'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाती टोपियाँ ॥
गाधी व भारत मातृ की जय बोलती ये टोपियाँ ।
स्वाधीनता के यज्ञ मे समिधा बनी ये टोपियाँ ॥
लडती नहीं ये टोपियां, हटती नही ये टोपियाँ ।
मुड़ती नही ये टोपियाँ, झुकती नही ये टोपियाँ ॥
ये टोपियां है पूज्य बापू की स्वदेशी शक्तियाँ ।
इनमें जगी है राष्ट्र के प्रति देश की अनुरक्तियाँ ॥

कुछ मोह प्राणो का नही, बस, एक इनकी भावना ।
स्वाधीन अपना देश हो, बस, एक इनकी कामना ॥
बर्बर दमन के चक्र मे यों देश अपना त्रस्त है ।
स्वाधीनता का हर पुजारी किन्तु हर्षोन्मत्त है ॥
बेटी कुसुम! तेरे पिता जी जेल मे भी है सुखी ।
तुमको न हमको हा उचित है इसलिए होना दुखी ॥
स्वाधीनता–हित जेल मे बाबू तुम्हारे धन्य हैं ।
अति भाग्यशाली हम, सुखी न हमसे न कोई अन्य है ॥"
"हे माँ! पिता जी से मिलेगे कब! बहुत दिन हो गये ।"
"बेटी! मिलन पर रोक है" कह, दो नयन चुप रो गये ॥
क्षण रुक कहा "शुभ कार्य मे हर कष्ट सहना चाहिए ।
आपत्ति-सकट की घडी मे धैर्य रखना चाहिए ॥
होता तपस्या साधना का नित्य शुभ परिणाम है ।
स्वाधीनता की ज्योति आप को असख्य प्रणाम है ॥"
"हे मा! मुझे भी एक छोटा सा तिरगा ला न दो ।
मै चाहती माँ! एक छोटा गीत भी सिखला न दो ॥
कैसा रहेगा जब तिरंगा ले चलूंगी हाथ मे ।
ऊँचे स्वरो मे गीत नग गाती रहूँगी साथ मे ॥
अँग्रेज तब आकर मुझे भी डाल देगे जेल मे ।
मा इस तरह तो मिल सकूंगी प्रिय पिता से जेल मे ॥"
सुनकर कुसुम की बात भर आया हृदय माँ का तभी ।
चिपका लिया निज वक्ष से, बरबस गिरे कुछ अश्रु भी ॥
बोली, "कुसुम! तेरे पिता जी आ रहे बस, शीघ्र ही ।
आओ चलें सोने, हमे जगना सुबह है शीघ्र ही ॥

पर सो सकी वे कौन जाने डोर कैसी मोह की।
अच्छी बुरी कुछ भी कहें यह तो पकड सी गोह की ॥
निज मुक्ति आँदोलन उधर नवशक्ति नित पाता रहा।
संकल्प के शुभ गीत हर दिन रात दुहराता रहा ॥
धरना असहयोगी बहिष्कारो भरे जन ज्वार मे।
कुछ छिद्र उभरे तत्र के उस तैरते व्यापार में ॥
सविनय अवज्ञा की जुडी? भीड कारागार मे।
सत्याग्रही सग्राम की चर्चा चली ससार मे ॥
स्वार्थान्ध हिंसा के समक्ष उठी विराट समग्रता।
जग ने सुनी उमड़ी अहिंसा पर दमन की उग्रता ॥
आतक, अत्याचार की सत्रस्त कार्यवाहियाँ।
कहता फिरा पूरब पवन उनकी नृशस कहानियाँ ॥
भरने लगी हर गौर दामन मे दमन की कालिमा।
सजने अहिंसा–तन लगी वलिदान की शुभ लालिमा ॥
घर मे ब्रिट्रिस सरकार की होने लगी आलोचना।
अपकीर्ति ससद मे मिली फटकार, निन्दा, लॉक्षना ॥
विषधर–छछुदर स हुई अँग्रेज सत्ता की दशा।
हलका हुआ साम्राज्यवादी स्वार्थ का गहरा नशा ॥
तब किया शासन ने प्रकाशित श्वेत पत्र सुधार का।
बन्धन शिथिल मानो हुआ स्वाधीनता के द्वार का ॥
स्वीकार संसद ने किया वह सविधानी योजना।
सपूर्ण भारत के लिए परिसघ की आयोजना ॥
इस योजना मे दी गयी हर प्रॉत को स्वाधीनता।
स्वाधीनता के हर मुहाने पर डटी आधीनता ॥

देशी नरेशो के रुखो पर सघ की संस्थापना ।
थी भेद शासन नीति अथवा द्वैध राग-अलापना ।।
परिसघ की आधीनता मे थी कहां स्वाधीनता ।
होती विदेशी बुद्धि मे कैसी कहाँ आत्मीयता ।।
इस सविधानी योजना पर देश अति विक्षुब्ध था ।
इस नाम की स्वाधीनता के प्रति न रच विलुब्ध था ।।
नीतिज्ञ वायसराय लिनलिथगो नियुक्त हुए नए ।
गतिरोध कुछ ढीला हुआ हैता प्रमुख छोड़े गये ।।
गाँधी उधर? सेवा,-अछूतोद्धार मे रमने लगे ।
हरिजन सभी की दृष्टि मे ऊँचे उठे, उठने लगे ।।
कॉंग्रेस ने निश्चित किया निर्वाचनो मे भाग ले ।
होकर सदस्य स्वदेश हित मे भीतरी स्वर साध ले ।।
वह तीव्रता आन्दोलनों की इसलिए दब सी गयी ।
कौंसिल प्रवेश, चुनाव चर्चा देश मे बढ सी गयी ।।
'हो जो जहाँ जनप्रिय उसी वह क्षेत्र' इस सिद्धान्त से ।
अभ्यर्थियों की सूचियाँ निर्मित हुई हर प्रान्त से ।।
जनप्रिय इलाहाबाद मे, कांग्रेस ने सोचा गुना ।
सबसे अधिक उपयुक्त शास्त्रीजी, अत. इनको चुना ।।
सपर्क और प्रचार से हर व्यक्ति अपना हो गया ।
वह हिन्दू, मुस्लिम, हरिजनों का भेद सारा खो गया ।।
भारी इन्हे बहुमत मिला, सम्पन्न निर्वाचन हुए ।
जीते इलाहाबाद से प्रान्तीय परिषद के लिए ।।
काँग्रेस दल सबके लिये जाना व पहचाना रहा ।
जनता-हितैषी, त्याग सेवा-मूर्ति हर नेता रहा ।।

दल के लिये विश्वास-श्रद्धा-भाव जन-जन मे रहा ।
गाँधी व भारतमातृ की जयकार मे जादू रहा ॥
व्यापक समर्थन देश ने काँग्रेस को चुनकर दिया ।
जगमग हुआ हर प्रांत मे निज मंत्रिमंडल का दिया ॥
नव लोक मगल की दिशाएँ झाँकती हर नेत्र मे ।
बिखरी प्रभा कृषि, भूमि मद्य-निषेध शिक्षा क्षेत्र मे ॥
उस लीग ने तो भी न छोड़ा रुख हठी निज रच भी ।
उगते रहे उसके निरन्तर साम्प्रदायिक मच भी ॥
फिर विश्वयुद्ध द्वितीय मे अनभिज्ञ भारत सँग लगा ॥
पद-त्याग से ले कर विविध आन्दोलनो का जग जगा ॥
इस युद्ध की हर हार से खीझी हुई सरकार थी ।
विषमय लगी स्वातंत्र्य के आश्वासनो की माग थी ॥
'प्राइम मिनिस्टर इसलिए क्या मै बना हू राज्य का ।
स्वातंत्र्य दे दीवालिया कर दू ब्रिटिश साम्राज्य का ॥'
इस चर्चिली-स्वर-तिलमिलाहट मे दमन पलने लगा ।
हर कक्ष कारा का अतिथियो से पुन. भरने लगा ॥
आन्दोलनो की नीति से विक्षुब्ध वीर सुभाष थे ।
अब हिल गये उनके अहिंसा पर सभी विश्वास थे ॥
तब 'फारवर्ड ब्लाक' का नव सगठन उनने किया ।
राष्ट्रीयता की उग्र धारा ने, किनारा पा लिया ॥
यह देश के प्रति मोह-धारा मे करारा मोड था ।
स्वर्णाक्षरो मे लेख्य कुछ इतिहास इसके क्रोड़ था ॥
यह मोह मानव का अनूठा एक मूल स्वभाव है ।
यह जाल, यदि सीमित, रहे व्यापक, महत्तम भाव है ॥

जो मोह को विस्तृत करे निज व्यष्टि जान समष्टि में।
मानव वही, जीवन वही सम्पूर्ण सार्थक सृष्टि में॥
थे मुक्त शास्त्री जी मनोगत मोह के दृढ पाश से।
उस दृष्टि मे हित व्यष्टि के निर्गन्ध पुष्प पलाश से॥
आदर्श के प्रति पूर्ण निष्ठा आचरण मे व्यक्त थी।
व्यवहार की हर प्रक्रिया सिद्धान्त से सम्पृक्त थी॥
सिद्धान्त उनके आचरण के लोक मंगल जन्य थे।
परिवार, सम्बन्धी, स्वजन के स्वार्थ नित्य नगण्य थे॥
मजू, पडी बीमार जब थे आप नैनी जेल मे।
कुछ बढ न पाये और पाला आ पड़े ज्यो बेल मे॥
साधन न थे, धन भी न था, उपचार क्या होता भला।
ऐसी परिस्थिति हो विषम, फिर क्यों न हो मन बावला॥
विक्षिप्त सी ललिता तरसती ही गई जिस हास को।
उन शुष्क अधरो ने जगाया उस उगे इतिहास को॥
'दो वर्ष की भी यह न मजू' स्नेहनिधि अनबोल है।
दो चार शब्दों मे खिली अभिव्यक्ति पर अनमोल है॥
प्रिय लाडिली सन्तान मजू गोद का श्रृगार है।
यह मजु मजूषा सुहासों की मधुर झकार है॥
वह एक चेतन दिव्य गुडिया, मूर्त उर का प्यार है।
दुनियाँ रही जो खेलती हा! आज वह बीमार है॥
जो भी यथा संभव हुआ हम यत्न करके छक गये।
सारे सहारे दीन ममता के विफल हो थक गये॥
हा! हन्त, दिन-दिन ही दशा इसकी बिगड़ती जा रही।
प्यारी लली मंजू हमारी क्यों कली कुम्हला रही॥?

अब क्या करूँ हे नाथ सत्वर आ सको तो आ सको।
आकर इसे अपने हृदय से एक बार लगा सको ।।
इसका रुदन ही वह भला था हास जिसके क्रोड मे
उर सालती यह शान्ति सज्ञाशून्यता के मोड मे
यह सूचना पा जेल मे शास्त्री व्यथित भारी हुए ।
परिवार के दायित्व सहसा चेतना से जा छुए ।।
उर मे उठी मुख देखने की स्नेहजन्य अधीरता
वे सीकचे बन्धन लगे हर क्षण लगा कुछ रीनता ।।
अधिकारियो मे जेल के औदार्य कुछ बरबस जगा ।
पेरौल पर छुट्टी मिली पर शर्त का बन्धन लगा ।।
प्रतिबन्ध यह आन्दोलनो मे सम्मिलित होगे नही ।
प्रतिबन्ध यह कुछ बात शासन के विरुद्ध कहे नही ।।
अवकाश की तो चाह थी रुचिकर न पर बन्धन लगे ।
सुनते अस्वीकृति दृढ स्वरो मे खडे अधिकारी ठगे ।
बोले–"यदपि आन्दोलनो मे भाग का न विचार है ।
बन्धन सहित अवकाश मुझको पर नही स्वीकार है ।।"
उत्तर मिला–"आयात् ऐसा ही परन्तु विधान है ।"
"तो यह विधान मनुष्यता का घोरतम अपमान है ।
कानून का उद्देश्य मानव का विशद कल्याण है ।
जिसमे सदाशयता नही कानून वह निष्प्राण है ।।
माना कि शान्ति–स्थापना शासन–व्यवस्था ध्येय है ।
पर शाँति मरघट की व्यवस्था स्वैरिणी क्या श्रेय है ।।
मरती उधर बेटी किसी की हो बिना उपचार के ।
आन्दोलनो मे भाग जैसे क्या प्रसग विचार के ।।

कानून तो बन्धन नही, अधिकार सुविधा के लिए ।
सम्मानपूर्वक सब जिएँ कानून जीवन के लिए ।।
ये आपके कानून केवल स्वार्थ के कानून है ।
सब लोक मगल की यहा सभावनाए न्यून है ।।"
"यह उग्रवाणी आपकी साम्राज्यघाती है बडी ।
हमको व्यवस्था बन्धनो की इसलिए करनी पडी ।।
यह जानकर आन्दोलनो मे भाग का न विचार है ।
बन्धन रहित अवकाश पन्द्रह दिवस का स्वीकार है ।।
यह आपके उच्चाचरण का एक पुष्ट प्रभाव है ।
यह दो हृदय का आपसी आश्वस्तकारी भाव है ।।"
हो मुक्त, घर को चल पड़े शास्त्री धड़कता उर लिये ।
थी हर चरण में शीघ्रता पर नेत्र आशका पिये ।।
चलते चरण लगते रहे उनको वही पर है खड़े ।
लगभग लगे वे दौडने ही स्नेह-बन्धन मे जडे ।
पहुचे सदन के सामने साहस नही सहसा हुआ ।
कुछ क्षण रुके आहट लिया सचार आशा का हुआ ।।
भीतर गये तो देखते ही रह गये निज अश को ।
मजू कहाँ थी एक छाया शेष उनके दर्श को ।।
प्रकृतिस्थ होकर शीघ्र ही वे लग गये उपचार में ।
कब अन्यथा होता लिखा जो बाम विधि व्यापार में ।।
उपचार थोडा भी न कर पाये कि मजू चल बसी ।
दिखने-दिखाने मात्र को थी स्यात् आत्मा तन बसी ।।
'मंजू हमारी चल बसी मजू हमारी चल बसी ।'
कहती हुई ललिता गिरी विच्छिन्न कोमल डाल सी ।।

स्तभित पिता की चेतना थी शून्यता मे खो रही ।
रोते सुमन, हरि, चुप कराती स्वय दादी रो रही ।।
यह सूचना पाकर पडोसी और परिचित आ गये ।
सबके हृदय आकाश पर घन शोक के घन छा गये ।।
कुछ मृत्यु रोदन का परस्पर अति गहन सम्बन्ध है ।
दुख-मृत्यु से होता रुदन से फूटता दुख बन्ध है ।।
रोता न यदि प्राणी कही दुख-भार सहता कौन रे।
सब तार जीवन के अझकृत क्या न रहते मौन रे ।।
जब मृत्यु से दुख सघन होता मोह के प्राबल्य से ।
तब भार हलका दुख का करता रुदन तारल्य से ।।
कुछ लोग कहते अमर आत्मा नाशवान शरीर है ।
यह मृत्यु तो बस तन बदलने की सरल तदबीर है ।।
है मृत्यु स्वाभाविक यहाँ भ्रमपूर्ण दुख की भावना ।
यह क्रम सतत् जब तक न पूरी मोक्ष की हो साधना ।।
ससार माया-मोह-ममता का शरीरी नाम है।
इनके सहारे चल रहा संसार का हर काम है ।।
कहना विकार इन्हे हमारी एक महती भूल है ।
ये स्वार्थ के ऊपर खिले कल्याणकारी फूल है ।।
सामान्य लोगो का जगत जीवन इन्ही मे बद्ध है ।
आघात सह इनके बनी उत्तम प्रकृति सन्नद्ध है ।।
जो प्रेम, करुणा, त्याग आदिक सार्वभौमिक सत्य है ।
सब व्याप्त माया-मोह-ममता के परार्थ प्रवृत्य है ।।
अच्छाइयो की है महत्ता क्योकि व्याप्त बुराइयाँ ।
सुख की महत्ता-वृद्धि मे दुख की गहन गहराइयाँ ।।

अच्छे बुरे के योग का ही नाम यह ससार है ।
अच्छाइयों की राह पर दुख का यहाँ अधिकार है ।।
प्रत्येक प्राणी को यहाँ सहनी पडे दुख-मार रे ।।
बचता वही जो धैर्य धर करता इसे स्वीकार रे ।
किसका यहा बस मृत्यु पर, यह ईश्वरीय विधान है।
देही नही मरता कभी यह देह तो परिधान हे ।।
बस एक जीवन तक हमारे है सभी नाते यहा ।
इस मृत्यु के पश्चात किसका कौन अपना है यहाँ ।।
निज वेदनाएँ व्यक्त कर-कर लोग समझाते रहे ।
शास्त्री रहे गम्भीर सुनते और कुछ गुनते रहे ।।
मजू गई निधि खो गई कितना मनुज असमर्थ है ।
अन्तिम क्रिया भी हो चुकी, रुकना यहाँ अब व्यर्थ है।।
चुपचाप उठ, ले हाथ बिस्तर जेल को चलने लगे ।
माँ ने कहा, सबने कहा, यह क्या, कहाँ चलने लगे ?
बोले-"भई मजू, रहा क्या, कार्य मेरा शेष है?"
"अवकाश तो चौदह दिनो का पर अभी अवशेष है ।"
"अवकाश था जिस कार्य का वह कार्य पूरा हो गया ।"
कह चल दिये शास्त्री उधर, जन मन इधर चुप रो गया ।।
विस्मृत हुये जेलर इन्हे यो देखकर लौटे हुये ।
सुन मृत्यु बेटी की, नयन से अश्रु दो बरबस चुये ।।
वह बार-बार बिचारता इनके हृदय को दुख व्यथा ।
गुनता रहा वह शात सागर की अतल हलचल कथा ।।
अवकाश पर इनको गये बस एक दिन ही तो हुआ ।
ऐसे समय! अवकाश भी! लौटे! न कुछ जैसे हुआ ।।

कितनी बडी सिद्धान्त–निष्ठा, क्या सरल सौजन्य है ।
यह आत्म गौरव धन्य यह जीवन तपस्वी धन्य है ।।
मैने सुना–इनकी अकिचनता, सजीव निरीहता
है धन्य इनका आत्म वैभव धन्य इनकी धीरता ।
यह त्याग के आकाश का लघुकाय इन्दु महान है ।
सघर्ष-तम मे इस प्रभा की निज निराली शान है ।।
जिस देश मे ऐसे मनस्वी लाल की हो साधना
स्वाधीनता की देश वह सत्वर करे सस्थापना ।
जिस देश नैतिकता, इनैसी आत्म बल की शक्ति हो ।
क्षण की वहाँ परतन्त्रता, युग की वहाँ उन्मुक्ति हो ।।
इस देश की परतन्त्रता तो फट का इतिहास है ।
इसके चिरतन भाव मे स्वाधीनता का वास है ।।
रह ही नही सकता कभी यह देर तक परतन्त्र है ।
तन–तन यहा निज तत्र है मनमन यहाँ निज तत्र है ।।
निजतत्रता मे एक सस्कृति भावना का मत्र है ।
स्वाधीन चेता धर्म प्रेरित अत्र शासन तत्र है ।।
माना कि सम्प्रति आवरण मे धर्म वह खोया हुआ ।
पर जग रही है हस्तियाँ ले पुण्य निज बोया हुआ ।।
उस एक गाधी की दिशा मे दौडती हर साँस है ।
पहचान भारत को सके वह खुल रही अब आँख है ।।"
इस भाँति शास्त्री जी सभी के मन हृदय हरते रहे ।
निज राष्ट्र के प्रति शुभ सभी मे भावना भरते रहे ।।
अँग्रेज शासन ने किये पीडन–दमन जिस जोर से ।
उससे अधिक घनघोर आन्दोलन उठे हर छोर से ।।

नीतिज्ञ शासन झुक गया हर द्वार कारा के खुले।
वातावरण में त्रस्त सत्ता के विनत कुछ स्वर ढ़ले ॥
जन-व्याप्त प्रतिहिंसा मिले नेता अहिंसा छा गई।
आन्दोलनों की अव्यवस्था में व्यवस्था आ गई।
उन्मुक्त होकर जेल से शास्त्री पुनः घर आ गये।
आन्दोलनों के संगठन-दायित्व सर पर छा गये ॥
उस संगठन के कार्य में नित रातदिन की व्यस्तता।
करते अथक श्रम, कम न होती कार्य की अनिवार्यता।
क्या वस्तु है विश्राम सुख इस व्यक्ति ने जाना नहीं।
कुछ भार बंधन कार्य को इसने कभी माना नहीं ॥
दायित्व ही बस देवता, सम्पूर्ति ही आराधना।
नित लोक मंगल ही समर्पण श्रम-सजल नीराजना ॥
निज देश उनके कर्म में, निज देश उनके धर्म में।
निज देश का उत्थान सुख जीवन कला के मर्म में ॥
निज देश उनके चाव में निज देश शक्ति स्वभाव में।
निज देश सेवा ही भरी प्रत्येक भाव-अभाव में ॥
दफ्तर अयन, दफ्तर शयन, जागे नयन चिन्ता नहीं।
आए अभी, भागे कहीं, भोजन कहाँ चिन्ता नहीं ॥
यह देख ललिता ने कभी रोका विहँसकर यह कहा।
"स्वामी! भला इस जेल से अब आप होंगे कब रिहा?"
बोले विहँस-"समझा प्रिये! तुम जेल जिसको कह रही।
यह व्यस्तता यदि जेल, तुम भी जेल से बाहर नहीं ॥
परतन्त्र अपना देश जब तक क्या उचित विश्राम है।
निज देश सेवा मात्र ही ललिते! हमारा काम है ॥

"मेरा नही आशय कि प्रियतम! आप भूले देश को।
परिवार की चिन्ता रही कब आपके परिवेश को॥
मजू गई जब, दुख-भरी मुझको उसी क्षण छोड़ना।
दायित्व से क्या था नही वह आपका मुख मोड़ना॥
कुछ रोकता क्या देश यदि रुकते विषम दुख-चाप मे।
होता सहारा आप-अपनो का बडा सन्ताप मे॥"
"दुख था तुम्हे! मुझको नही, यह तो तुम्हारी भल है।
रुकता यहाँ, दुख और बढता मोह-मति दुख-मूल है॥
पर जेल मे कुछ भाव ममता के जगे नयनो बसे।
देखो, रची ये पंक्तिया ललिते तुम्हारी ओर से॥"
'बेटी तू बन गई हमारी अमर देश की सुन्दर रानी।
बीती बात बनाती पागल शेष रही बस एक कहानी॥
बड़े प्यार से बेटी तुझको मैं अको मे लेती थी।
(मधुर मन्द मुस्कानो से तू घर मे सुख भर देती थी॥
अपनी राजदुलारी की मै बिना मोल की चेटी थी।)
मैं थी तेरी प्यारी माँ, तू मेरी प्यारी बेटी थी॥
मुझ गरीबिनी दुखिया माँ को क्यों बेटी तू छोड़ चली।
पहले तो बन्धन मे बाँधा फिर क्यो इसको तोड चली॥
पहले खेल था निठुर नियति का अभी जो तुमने खेला है।
यह कह बन्धन तोड चली कि जग तो एक झमेला है॥'
सुनते-सुनाते याद मे दम्पति क्षणो को खो गये।
गीले हुए सूने नयन मन-मन निनारे रो गये॥
सब मिट गया विक्षोभ, ललिता ने पुनः की प्रार्थना।
"हे नाथ! तन का ध्यान रखिये, स्वास्थ्य से ही साधना॥

तन स्वस्थ मे ही स्वस्थ मन का नित्य होना वास है ।
शुभ कर्म की हर साधना का स्वास्थ्य ही इतिहास है ।।
यदि और कुछ सभव नही भोजन समयतः तो करे ।
है दे रही मा दोष हमको बोलिए, हम क्या करे ।।
स्वामी! विनय सुन लीजिए 'हम आज से यह व्रत धरे ।
'जब तक भोजन आप लें, भोजन नहीं हम भी करें ।।"
हँस कर कहा—"होगा यही, जैसी सभी की कामना ।
यह एक सत्याग्रह विकट जिससे पड़ा है सामना ।।"

"अनुपम कितनी नाथ! यह सत्याग्रह की युक्ति ।
नयन-नयन निश्वास अब शीघ्र मिलेगी मुक्ति ।।"
मुक्ति एक प्रश्न है
मुक्ति एक उत्तर ।
दासता अप्रश्न है
दासता अनुत्तर ।।
हिंसा के प्रश्न का
अहिंसा समुत्तर ।
आत्म शक्ति सामने
शक्ति सब निरुत्तर ।।

किसी ने माँगने से कब यहाँ अधिकार पाये है ।
किया संघर्ष जिसने वे उसी के साथ आये है ।।
भरे है भाग्य सबके किन्तु श्रम-जल मे फला करते ।
मिला करती उन्हें मंजिल निरन्तर जो चला करते ।।

## संघर्ष छठवाँ सर्ग

युगो से चल रहा मानव, वही मजिल नये साथी।
अनेको चुक गई राहे, अनेको भटकने नाथी ॥
बिना जाने सही मजिल कुराहों मे कही अटका
निराशा, स्वार्थ, माया वश भुलावो मे कही भटका।
नही मजिल मिली उसको सरायो मे बसा सोया।
अभी का सत्य कल के सत्य के विश्वास में खोया ॥
कभी उसका बना इतिहास भौतिक सुख उपार्जन का।
उसी मे खोजता साधन रहा, सुख शान्ति सर्जन का ॥
कभी आत्मिक जगत् के सूक्ष्म तत्वो मे रहा उलझा।
जगे आयाम चिन्तन के, रहस्यों का न क्रम सुलझा ॥
किया हर क्षेत्र मे उन्नति, धरातल खन खनिज खोजे।
अतल गहराईयो मे सिंधु के उपयोग नव खोजे ॥
उडा आकाश मे मानव, किसी ग्रह पर कही उतरा।
प्रकृति को दे चुनौती आज का विज्ञान फिर इतरा ॥
पुरानी मान्यताएं धर्म की क्रमश मिटी जाती।
वधिर पूर्वाग्रहो की भित्तियां खण्डित ढही जाती ॥
नही विश्वास श्रद्धा कुछ परीक्षित सत्य के आगे।
भवानी बुद्धि, शकर तर्क, युग विज्ञान के जागे ॥
प्रगति का काल या फिर भूमिका विध्वंश की जागी।
भटकती वाद-सकुल मे मनुजता फिर रही भागी ॥
इधर मानव अपरिमित शक्ति का स्वामी बना जाता।
उधर सकीर्ण निजता मे उलझ विघटन घना जाता ॥
बढ़ा मस्तिष्क आगे, पर हृदय पीछे कही छूटा।
अनेकों बार दैवी सम्पदा को दस्यु ने लूटा ॥

मिला तन को भले ही सुख, न मन को शांति मिल पाई ।
हुई औषधि जहाँ जितनी बढी उतनी अधिक काई ॥
मिला मानव, बटा मानव, विभाजित हो गये अपने ।
जगत कल्याण के सारे अधूरे ही रहे सपने ॥
स्वय की शाति का कामी, स्वय के स्वार्थ का दासी ।
लडा मानव, मिटा मानव, घृणा-विद्वेष-अनुगामी ॥
भयानक युद्ध-ज्वाला मे हुई उपलब्धियां स्वाहा ।
मिली जो भी पराजय जय सदा परिणाम अनचाहा ॥
सहे सत्रास मानव ने अपरिमित, जग सजाने को ।
बहे कितने न जाने अश्रु मुकलित हास पाने को ॥
छिपी प्राय: रही हर युद्ध मे छल स्वार्थ की भाषा ।
निदर्शन क्रूरता का युद्ध, इसकी एक परिभाषा ॥
प्रगति या शांति हित यह युद्ध सबलों का बहाना है ।
निबल का यह करुण क्रन्दन सजाये ध्वस नाना है ॥
अरुण सिन्दूर मांगो के हजारों ही उजड़ जाते ।
तरुण कितने न जाने ही विवश मां से बिछुड़ जाते ॥
बहन की मजु राखी का [illegible] ससार खोना है ।
कही बूढे पिता की आयु का आधार रोता है ।
हताहत ओर क्षत-विक्षत सहस्त्रों तन बिखरते है ।
खिले उद्यान मे जैसे सुमन लू से झुलसते है ॥
घृणा धर वेश हिसा का अमानव नृत्य करती है ।
विपुल विध्वस मे फिर रक्त की होली धधकती है ।
जहा आतक उत्पीडन यातना की नहीं गणना ।
परस्पर शत्रुता के दाव खुलकर मिलती छलना ॥

यही है युद्ध का वातावरण अन्याय की हाला।
जिसे पी भल मानवता बने मानव असुर काला ॥
मगर सग्राम कुछ ऐसे धरा पर श्लाघ्य होते है
अमर बलिदान जिनके विश्व मे आराध्य होते है।
सदृश स्वाधीनता-सग्राम भारत का निराला है।
अहिंसा सत्य जिसके अस्त्र पीछे हस-माला है ॥
जहाँ अन्याय के प्रतिरोध को सविनय अवज्ञा है।
विदेशी दासता से मुक्ति जन-जन की प्रतिज्ञा है॥
सिरो पर श्वेत टोपी है, करो मे ध्वज तिरगा है।
चली बह, मुक्ति-सागर से मिलन को, प्राण गंगा है॥
स्वरों मे इन्कलाबी गीत, जय जयकार की आंधी।
चरण शत कोटि पर सबकी दिशा बस एक ही गांधी॥
बडा उस काल इस संग्राम का रणवेश खिलता था।
अमर बलिदानियो से रक्त का अभिषेक मिलता था॥
उधर इटली व जर्मन के सबल खूनी दुधारे थे।
अयाचित ही मिले बढते जिन्हे रूसी सहारे थे॥
अहिंसा और हिंसा से घिरे साम्राज्यवादी थे।
मगर 'चर्चिल' विदेशी नीति मे हठधर्मवादी थे॥
समझते वे कि "भारतवर्ष है बहुमूल्यतम हीरा।
मरण साम्राज्य का यदि मुक्त होकर छिन गया हीरा॥
इसी के बल निराली शान यह वैभव हमारा है।
हुआ यदि मुक्त, अपना अस्त ही सौभाग्य-तारा है॥"
विभाजन-शास्ति की वह नीति फलतः फिर हुई हावी।
हुआ साकार वह ढाँचा विभाजन का दुखद भावी॥

नरेशो और मुस्लिम लीग के छल–स्वार्थ खुल उछले ।
बदलते रूस के संग साम्यवादी स्वर सहज बदले ।।
तभी जापान आ कूदा धुरी की राष्ट्र धारा में ।
फँसी साम्राज्य की नौका भँवर मे बीच धारा मे ।।
पराजय मित्रराष्ट्रो की लगी हर क्षेत्र मे होने ।
परिधि साम्राज्य की विस्तार निज क्रमशः लगी खोने ।।
प्रखर राष्ट्रीयता का वेग तूफानी बना जाता ।
महासाम्राज्य का विस्तार तृण-तृण सा उडा जाता ।।
पडी काँग्रेस द्विविधा मे समस्या नीति की आई ।
परिस्थिति, लक्ष्य से सिद्धान्त के टकराव की आई ।।
मनस्वी व्यक्तियो को सर्वदा सिद्धान्त प्रिय होते ।
सहज, सिद्धान्त के हित वे स्वय सर्वस्व तक खोते ।।
भले ही लक्ष्य हो पूरा, रहे किंवा अधूरा ही ।
कभी छोडा न करते राह निज सिद्धान्त प्रिय राही ।।
कनक कुन्दन कसौटी पर कसे उपरान्त होता है ।
सही जो अन्ततः हो सिद्ध वह सिद्धान्त होता है ।।
पुजारी लक्ष्य का सिद्धान्त से यदि हीन होता है ।
भटकता प्रायश वह लक्ष्य भी पूरा न होता है ।।
मिले यदि लक्ष्य भी मिलता नही आनन्द वह सच्चा।
कहा वह रस, कहाँ वह स्वाद यदि हो आम कुछ कच्चा ।।
मिला काग्रेस को नेतृत्व जब से पूज्य बापू का ।
मिला काग्रेस को जब से सबल सिद्धान्त बापू का ।।
अहिंसा, सत्य, मानव-प्रेम की धारा धरा धायी ।
नहाकर पूत सब होने लगे काग्रेस - अनुयायी ।।

जगी सग्राम में सस्कार गत सिद्धान्त नैतिकता ।
सदुत्तम साध्य के ही साथ साधन की सदुत्तमता ।।
बिट्रिश सामाज्यवादी थे यदपि जनतन्त्र के हामी
मनुज स्वातंत्र्य, समता, बन्धुता के साध्य अनुगामी
तदपि सत्तान्ध मद मे वे रहे निज साध्य ही भूले ।
करारी हिंस्र चोटो के पराजय-दश जब हूले ।।
नशा कुछ कम हुआ देने लगे जनतन्त्र के नारे
धुरी के राष्ट्र सब घोषित हुये जनतन्त्र हत्यारे
विरोधीहर मनुजस्वातन्त्र्य के फाँसी कि हो नाजी ।
पुजारी शक्ति के सर्वाधिकारी तन्त्र के गाजी ।।
नही इनको तनिक भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की चिन्ता
सबलतम राज्य इनका साध्य साधन शक्ति ही चिता।
समझते युद्ध को अनिवार्य ये सघर्ष विश्वासी ।
जगत की शाति कोरी कल्पना या युद्ध की दासी ।।
उपासक थी यहाँ कांग्रेस समता शाँति के मग की
उसे थी चाह मानव के सतत् हँसते हुये जग की।
ब्रिट्रिश सरकार को सहयोग दे या हो असहयोगी ।
समस्या लक्ष्य की सिद्धान्त से हल किस तरह होगी ।।
हुई चर्चा समस्या पर समिति की एक बैठक मे।
किया प्रस्ताव शास्त्री ने समय के चाहते स्वर मे ।।
"अधर मे जबकि है लटका हुआ अस्तित्व लदन का ।
यही अवसर उचित बापू ! हमारे लक्ष्य-वदन का ।।
उठाना लाभ अनुचित है किसी की भी बिवशता का।
उचित होता न शठता से कभी व्यबहार शठता का ।।

"मगर यह व्यक्ति-नैतिकता न लाग राष्ट्र पर होती।
महा अपराध हत्या किन्तु फासी क्षेम कर होती ॥"
"सुनो शास्त्री! अहिंसा–सत्य की दुनिया निराली है।
सदा सबके लिये वह एक नैतिक मूल्य वाली है ॥
नही है व्यक्ति और समष्टि के हित मे असगतता।
अपितु ये तत्वत. है एक सीकर-सिन्धु-पूरकता ॥
समुच्चय व्यक्ति के व्यापक हितो का राज्य हितकारी।
किसी सद्काव्य सा यह स्वार्थ-परता का परिष्कारी ॥
रमा जो व्यक्ति मे है सत्य वह ही राज्य मे समझो।
भला फिर भिन्न होने चाहिए क्यों मूल्य? मत उलझो ॥
हुए जब भिन्न मूल्य, समाज मे जागी विषमतताएँ।
उन्ही के ताप तपती स्वार्थ-शोषण की शलाकाएँ ॥
इसी कारण विविध है कष्ट मानव के बढ जाते।
हुए झूठे मनुज के ही मनुज से ही सभी नाते ॥
हमे स्वाधीनता की चाह केवल इसलिए, शास्त्री।
हमारी यह धरा बन जाय जग–कल्याण की धात्री ॥
अत सिद्धान्त अन्तर्गत बिषो का पान कर लेगे।
हितो की पुण्य वेदी पर स्व का बलिदान कर देगे ॥
बुरे साम्राज्यवादी पर प्रजातँत्रीय बाना है।
अधिक इनसे बुरे अधिनायकी, कल क्या ठिकाना है ॥
भले ही और कुछ दिन मुक्ति का जग हम नही पायें।
न चाहेगे, प्रजातत्रीय बढते पग उलट जाये।'
अभी तो मित्र राष्ट्रो के भले सिद्धान्त लगते हैं।
चले हम भी उन्ही के साथ, यद्यपि व्रण कसकते है ॥

हुए सहमत सभी शास्त्री सहित कॉंग्रेस, के बाने ।
स्वरो मे एक ही स्वर हो, यही नेतृत्व के माने ॥
सरल सहयोग का निर्णय न सत्ता की समझ आया
स्वय ही वह रही शक्ति, कुटिलता की कुटिल माया।
कुटिल नीतिज्ञ चर्चिल ने, कपट–अभियान सधाना ।
गया समझा अहिंसक देश को आसान बहलाना ॥
पधारे 'क्रिप्स' अपनी योजना ले साथ शतखण्डी ।
'रही दीवालिया जो बैंक की पश्चात् तिथि हुण्डी।'
भला शंकित हृदय सहयोग का प्रतिदान क्या देता ।
भुलावे के छलावे मे न आये देश के नेता ।।
न कम स्वीकार्य कुछ स्वाधीनता परिपूर्ण पाने से ।
अनादृत क्रिप्स लौटे रिक्त भारत के मुहाने से ॥
ब्रिट्रिश मन्तव्य भी खुलकर सभी के सामने आया ।
समूचे देश में, कांग्रेस मे विक्षोभ नव छाया ॥
सकेगी हो न पूरी इस तरह स्वाधीन अभिलाषा ।
नही साम्राज्य–लिप्सा जानती प्रस्ताव की भाषा ॥
'करो या तो मरो' उद्घोष गूंजा मन्त्र गाधी का ।
'विदेशी छोड दो, भारत' उठा तूफान आधी का ॥
सुनी सबने अगर्वित ओजमय उस सत की वाणी ।
जगी जन जन जगाती जागरण की ज्योति कल्याणी ॥
अहिंसा मूल आन्दोलन अहिंसक क्रान्ति मे बदले ।
प्रबल युग चेतना के सिंह रव सुन गौर गज दहले ॥
'बयालिस' की विलक्षण क्रान्ति का इतिहास क्या जागा।
बंधा आधीन भारत का ब्रिट्रिश विश्वास ही भागा ॥

त्वरित गांधी सहित पकड़े गये जो मिल सके नेता ।
बँधा वह सूत्र संचालक, दिशा जो क्रान्ति को देता ।।
'मरो' मे तो निहित थी स्पष्टतः बलिदान की आँधी ।
'करो' को अर्थ देने से प्रथम ही बँध गये गांधी ।।
रहे जीवित, रहे जीवन्त जिससे क्रान्ति कल्याणी ।
हुए कुछ भूमिगत शास्त्री सहित सिद्धान्त प्रिय प्राणी ।।
सजग हो ध्येयरत शास्त्री अहर्निश काम करते थे ।
सुलगती क्रान्ति मे बल प्रेरणा अविराम भरते थे ।।
प्रचारक प्रेरणा साहित्य लिखते नित दिशा देते ।
सहज उन्मेष भावो के, सहज अपना बना लेते ।।
स्वय ही डुप्लिकेटिंग यन्त्र पर आवृत्तियाँ करते ।
प्रबल जन भावनाओ मे अहिंसक वृत्तियाँ भरते ।।
बिना दृढ़ सगठन के भावनाएँ भीड़ होती है ।।
बिलग चिंगारियाँ प्रभविष्णुता मे क्षीण होती है ।।
निकटसम्पर्क समिल क्रान्ति-कणिका ज्वाल बन जाती ।
पहुँचने से प्रथम उनके वहा जागृति पहुँच जाती ।।
दिनो-दिन जा रही बढ़ती चतुर्दिक जागरण-ज्वाला ।
बिरगे रग पुष्पों से सजाती क्रान्ति जय माला ।।
पुलिस थी व्यग्र फैले जाल मे शास्त्री न आते थे ।
नियोजित गुप्तचर उनकी न गतिविधि जान पाते थे ।।
पुलिस से युक्तिपूर्वक नित्य अपने को वचाते थे ।
दमन-सत्रस्त जनता को पहुँच ढाढस बँधाते थे ।।
बिजय की दृष्टि से यह भूमिगत जीवन तपस्या थी ।
मगर शास्त्री सदृश सत्याग्रही को यह समस्या थी ।।

सतत् छिपना, छिपाना गुप्त विधि से कार्य छल करना ।
सहज आत्मा न साक्षी दे कभी, परिताप क्या कहना ।।
कहा विश्वास उनका श्रेष्ठ साधन साध्य पर चलना ।
अगर आत्मा न साक्षी दे, न अनुचित कार्य वह करना ।।

किया निर्णय मिशन अनुरूप खुलकर क्रान्ति करने का ।
प्रथमतः लोक घंटाघर निकट उत्क्रान्ति करने का ।।
इलाहाबाद में यह सूचना विद्युत सदृश व्यापी ।
सुना नगराधिकारी ने कि उसकी रूह तक काँपी ।।

समय से पूर्व ही सड़कें भरीं जन-जन समूहों से ।
घिरा उत्साह का सागर पुलिस के दृष्टि-व्यूहों से ।।
चतुर्दिक एक आशा थी चतुर्दिक एक आशंका ।
क्षणों में कांपने वाला यहाँ था क्रान्ति का डंका ।।

भरे आकाश में भूरे बलाहक खण्ड दिखते थे ।
अगोचर रवि धरा की ओर आभा पुंज बढ़ते थे ।।
बजा जब पाँच का घंटा, पवन ठहरा, हृदय धड़के ।
हुआ वातावरण निस्तब्ध, तांगे पर नयन अटके ।।

जहाँ पर था खड़ा व्यक्तित्व गुरु लघुकाय शास्त्री का ।
भरा वातावरण में हर्ष जय जयकार शास्त्री का ।।
उठे 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे गगन भेदी ।
सजी जनघोष वन्दनवार से जनक्रान्ति की वेदी ।।

पवन में स्वर लहरियों की पताकाएँ सुभग फहरीं ।
तभी गंभीर मन की भावनाएँ मंत्र सी लहरीं ।।
"प्रतापी देश के रण बाकुरो ! वीरांगनाओ ! हे !
सुनो जनक्रान्ति का सन्देश भावी कर्णधारो ! हे!

परम उस शक्ति के अंग्रेज भी है अंश हम जिसके ।
परस्पर हम सभी भाई भला फिर कौन अरि किसके ? ।।
नही उनके विरोधी हम अपितु स्वाधीनता-कामी ।
बहे गगा हमारी मुक्त बस हम मुक्ति के हामी ।।
धवल हिमगिरि रहे ऊँचा हमारी एक अभिलाषा ।
मनुज को न्याय समता बधुता की मिल सके भाषा ।।
मगर साम्राज्य सत्ता तुच्छ निंदित मानती हमको ।
किया इसने मनुज-अधिकार से वचित यहाँ सबको ।।
दमन, आतक, उत्पीडन मिला यदि कुछ कहा हमने ।
सदा जिस शास्ति मे अन्याय शोषण ही सहा सबने ।।
विरोधी हम उसी के है, न अब सत्रास रह सकता ।
जहाँ जब क्रान्ति जागे देश वह कब दास रह सकता ?
'बयालिस क्रान्ति' के इस यज्ञ ने बलिदान मागा है ।
हमारा अभिलिषित स्वाधीन हिन्दुस्तान मागा है ।।
नही कोई यहा अधिकार शासन का विदेशी को ।
यहाँ अधिकार सारे अब हमारे हर स्वदेशी को ।।
शपथ, अधिकार की रक्षा हमारी अर्चना, पूजा ।
शपथ, बलिदान की सबको" तरगित स्वर सहज गूँजा ।।
कहा इतना कि अधिकारी वहां वारेण्ट ले आया ।
रहे थे काँप उसके कर, करो के साथ ही छाया ।।
बढा जन क्षोभ, शास्त्री ने इशारे से सहज रोका ।
हुआ जयकार भारी रव भरा सर्वत्र नारो का ।।
छिपे फिर रवि, बलाहक खण्ड ऊपर एक घिर आया ।
गया जन क्रान्ति का वह दूत कारागार पहुँचाया ।।

न होता जेल का जीवन कठिन कुछ भी तपस्वी को ।
सुलभ एकान्त अवसर आत्मचिंतन का, मनस्वी को ।।
यहाँ सजती सुनहली भूमिकाएँ नव विचारो की ।
सुलझती गुत्थियाँ मँझधार से लेकर किनारो की ।।
अखिल प्राणी-जगत मे यह मनुज सौभाग्यशाली है ।
मिली जिसको सहज ही बुद्धि चिंतन की प्रणाली है ।।
विलक्षण चिंतना से फलवती है मूल जिज्ञासा ।
मनुज का नित रहा करता इसी के बल प्रबल पासा ।।
विचारो की धरा पर सभ्यता के हर महल सजते ।
विचारों के स्वरों पर राग सस्कृति के नवल कसते ।।
विविध साँचे विचारो के विविध आचार की निधियाँ ।
दिशा चिन्तन चयन शोधनमयी कल्याण की निधियाँ ।।
विचारक के हृदय अनुभूति हर घटना जगा जाती ।
धरा उर्बर घटा रचक बरस अकुर उगा जाती ।।
सहज सयोग कारण-कार्य की अभिव्यक्ति घटनाएँ ।
इन्ही के पथ करें अभियान जीवन-यान गति पाएँ ।।
मनस्वी किन्तु घटना-कारको के आप सयोगी ।
बनाती चिन्तना उनकी दिशा को विश्व उपयोगी ।।
बहे अनुभूति की गगा निरतर आत्म-चिन्तन मे ।
अलौकिक प्रेरणा के पद्म पलते प्राण-पिगल मे ।।
प्रकाशित चिर करे स्वाध्याय की पावन प्रभा पथ को ।
हृदय विस्तृत नियत्रित नित करे मस्तिष्क के रथ को ।।
सजग स्वाध्याय चिंतन क्षेत्र मे शास्त्री विचरते थे ।
महा व्यक्तित्व के वर बीज क्रम-क्रम से उभरते थे ।।

पदार्थों की तरह अनगढ मनुज की भी प्रकृति होती ।
सँवरने पर खिले सौन्दर्य, निखरे सीप के मोती ।।
खिलौनो या घटों के रूप पा सुन्दर बने माटी ।
मनोरम बाटिका लगती व्यवस्था से कटी छाँटी ।।
असुन्दर धातु के ही यन्त्र, आभूषण मनोहारी ।
रसायन तुच्छ होते किन्तु औषधि योग गुणकारी ।।
निरन्तर साधना से यह मनुज सुन्दर बना करता ।
महा व्यक्तित्व चितन, साधना से ही गढ़ा करता ।।
मनोगत चिन्तना आचार में जब आ उतरती है ।
कली जब साधना की फूल बनकर के महकती है ।।
उभरती भावगत सवेदना जब अन्तरात्मा की ।
सुधा झर-झर बरसती साधनागत तब मनुजता की ।।
यहाँ तन और मन की साधना भी हो चली पूरी ।
मिटी अचिरात् शास्त्री शास्त्र की ध्वनि अर्थ की दूरी ।।
पढी जय-जीवनी जब जेल मे 'मादाम क्यूरी' की ।
सतत् सघर्षरत अपराजिता आदर्श नारी की ।।
प्रभावित हो सरल स्वाधीन लघु अनुवाद कर डाला ।
पिरो निज मान्यताओं की पिन्हा दी आमुखी माला ।।
नही आदर्श अनुकरणीय
जिसके क्रोड मानवता ।
वही है धर्म जिससे सध सके
शिव सत्य सुन्दरता ।।
वही है ज्ञान जिसमे कर्म की
निष्ठा पगी होती ।

वही है कीर्ति जिसमें नम्रता की
लौ लगी होती ।
महत्ता है बड़े छोटे सभी मे
प्यार भर देना ।।
चिरन्तन प्रेम है अपनत्व का
विस्तार कर लेना ।
वही है लक्ष्य जिसमे हित निहित
हो विश्व जीवन का ।।
किसी के काम आ जाये
वही है मोक्ष इस तन का ।।
वही है कर्म जिसके मर्म में
दायित्व की रेखा ।
वही उपलब्धि जिसमे मानवी–
मुस्कान की लेखा ।।
करे प्रिय सत्य की अभिव्यक्ति
कल्याणी वही वाणी ।
वही व्यवहार जिसके वश
रहा करते सकल प्राणी ।
वही जीवन जहाँ सतत्
शरण हर अश्रु को मिलती ।
वही है मृत्यु जिसकी याद
युग–युग तक बनी रहती ।।
वही है कि पथ जो गतव्य तक
पहुँचा सके सबको ।

वही है हाथ जो बढकर
सहारा दे सके सबको ।।
वही शासन जहा जन-जन
जगा कल्याण रहता है।
वही पूरब जहा सूरज
प्रथम मुस्कान भरता है ।।
सिनेमा खेल प्रेमालाप फैशन मात्र पश्चिम है ।
समझते जो उन्हें यह जीवनी सस्नेह अर्पित है ।।
हुई शिक्षित जहाँ कुछ इस हमारे देश मे नारी ।
मिली अथवा जिन्हे सम्पन्नता की रम्य फुलवारी ।।
गृही-दायित्व सेवा कार्य से वे दूर भगती है ।
प्रतिष्ठा के उन्हे प्रतिकूल, पिछड़ापन समझती है ।।
अपेक्षा नित्य सेवक-सेविकाओ की रहे जिनको ।
विदेशी एक नारी की समर्पित जीवनी उनको ।।
रहे इस भाँति उपयोगी दिवस वे जेल वाले भी ।
मँजा लेखन, मँजा चिन्तन, मिले अनुभव निराले भी।।
निकट सम्पर्क से अपराधियों की वृत्ति भी सुधरी ।
हृदय मे देश और समाज-हित की चेतना उभरी ।।
जगत मे जन्मत: कोई हुआ करता न अपराधी ।
परिस्थिति जन्य विधि-लघन, परिस्थिति जन्य अपराधी ।।
रहे अपराध ही केवल घृणास्पद हो न अपराधी ।
सुधरने की सदा संभावना से युक्त अपराधी ।।
सदा सद्वृत्तिया सबमे, मिले वातावरण, जागे ।
अनेको आन्तरिक अपराध मूलक वृत्तियां भागे ।।

न हो शोषण दमन कोई परिस्थिति हो न अभिशापी।
न हो अन्याय उत्पीडन, न हो अपराध सतापी।।
मनुज तो जन्म से ही एक सामाजिक प्रकृति प्राणी
अत. उसकी असामाजिक क्रिया निन्दित अकल्याणी
न क्यो मैत्री मनुष्यो की, मनुष्यो सी मनुष्यो से।
निरन्तर सोचते शास्त्री, उलझ जाते रहस्यो से।।
इधर थे बंद जन नेता विवश निरुपाय क्षमता थी।
उधर राष्ट्रीयता के द्वार खोले क्षुब्ध जनता थी।।
भरी थी भावना में क्रान्ति की सत्रस्त ज्वालाएँ।
रही थी खोज अर्थों को उन्ही की शब्द मालाएँ।।
नही था कार्य क्रम कोई, नहीं थी कुछ व्यवस्था ही।
जुलूसो जन-सभाओ से न तोषे क्रान्ति के राही।।
खड़ी उत्तेजना आकुल पसारे दृष्टि पथ-भेदी।
तभी झूठे लगा आरोप 'एमरी' ने दिशा दे दी।।
हुई सर्वत्र हड़तालें, रुके हर काम सरकारी।
श्रमिक बनते असहयोगी मशीने ठप्प कर सारी।।
उजाड़े ड़ाकघर, स्टेशन, उखाडी रेल की पटरी।
मरोड़े तार के खम्भे लुटी कानून की गठरी।।
जला दी चौकियाँ, थाने कही पर पड़ गये ताले।
विदेशी चिह्न शासन के कही पूरे मिटा डाले।।
कही रौदा पडा था 'जैक' लहराता तिरंगा था।
जगी जन क्रान्ति रचती सर्वथा अपनी स्वयं गाथा।।
दमन के जोर से इतिहास ने कुख्याति फिर पाली।
कलंकी रेख उभरी और गोरे भाल पर काली।।

क्रिया की प्रतिक्रिया सी क्रान्ति गहराती, दमन, बढता ।
निहत्थी भीड़ से भिड़ती सुसज्जित सैन्य बर्बरता ।।
दमन आतंक के दुष्काण्ड बरबस उर हिला देते ।
मनुजता पर सहज विश्वास की प्रतिष्ठा मिटा देते ।।
दमन आतंक क्या यह तो महा नरमेध कोई था। ।
बलात्कारी नरो का पाशविक विद्रूप कोई था ।।
छड़ों से छेद सैनिक भूनते शिशु को, विवश माता ।
बहन की लाज लूटते देखता मरता हुआ भ्राता ।।
कहाँ गणनांक गोली गैस के राउन्ड ही भूले ।
कहाँ उजड़ी-जली-नर-बस्तियो की राख क्या तूले ?
रही जो शेष कुछ दुर्गति किया दुर्भिक्ष ने पूरी ।
हजारों ने क्षुधा के छोर नापी मृत्यु की दूरी ।।
नही था प्राकृतिक दुर्भिक्ष यह नर ही स्वयं दोषी ।
उपेक्षा स्वार्थ के षड्यंत्र इस विस्तार के पोषी ।।
क्षुधित मानव लड़ा उच्छिष्ट भोजन हेतु स्वानों से ।
पथों पर शव, शवो पर शिशु मरे लिपटे बिरानों से ।
मनुज ही जब मनुज की मृत्यु का कारण बना करता ।
बडा सदेह तब उसकी मनुजता पर हुआ करता ।।
मनुज होकर मनुज कल्याण का साधक न बन पाया ।
निरर्थक वह मनुज जन्मा पली पशुता मनुज काया ।।
मनुज मनुजत्व से गिरकर प्रकट असुरत्व बनता है ।
मनुज ,मनुजत्व से उठकर प्रकट देवत्व बनता है ।।
विलग मनुजत्व से देवत्व कोई कल्पना माया ।
विमल मनुजत्व के आदर्श ही देवत्व की काया ।।

सुकर कोई नही आदर्श की सस्थापना जग में ।
अनेकों विघ्न बाधाएँ पडा करती सदा मग मे ।।
मनस्वी सकटो मे किन्तु घबड़ाया नहीं करते ।
निराशा-घन कभी उनके गगन आया नही करते ।।
अटल विश्वास जिनका कर्म पर सतत् बना रहता ।
उन्हे कर्मानुरागी कर्म योगी जग कहा करता ।।
विविध संताप सहकर भी न धीरज जो कभी खोते ।
मनोरथ ध्येय उनके अन्तत· असफल नही होते ।।
अमर स्वाधीनता के ध्येय साधक 'घोश जी' अपने ।
अमर 'आजाद सेना हिन्द' नेता 'बोस' के सपने ।।
अमर वह भाव संबोधन, सबल जय हिन्द का नारा ।
अमर वह सब जिन्होने ध्येय हित सर्वस्व तक वारा ।।
तुला के दान के इतिहास बर्मा मे अमर जागे ।
तिरगे की लहर ने जौक के बिखरा दिये धागे ।।
अमर आह्वान के वे शब्द "सैनिक साथियो वीरो ।
पुकारा रक्त ने तुमको, चलो दिल्ली, चलो वीरो ।।
तुम्हारे रक्त की हर बूँद का विश्वास चाहूँगा ।
मुझे तुम रक्त दो निज मै, तुम्हे स्वाधीनता दूँगा ।।
अमर निज देश के जल सैनिको का विलप्वी कंधा ।
कलकित किन्तु 'दो राष्ट्रीय' लीगी स्वार्थ का धधा ।।
भले ही क्रान्ति तत्क्षण दे न पायी मुक्ति की धारा ।
तदपि वह कर गई नीचा ब्रितानी गर्व का पारा ।।
भले ही मित्र राष्ट्रो की विजय का गड गया झंडा ।
तदपि फूटा ब्रिट्रिस साम्राज्य के विस्तार का भड़ा ।।

भले 'हीरोशिमा-नागासकी' खंडहर बने, उजडे ।
तदपि विज्ञान के विध्वसकारी खुल गये जबड़े ।।
रहा हीरा ब्रिट्रिश भारत, गले की बन गया हड्डी ।।
लगी बजने दिशाओ मे मनोरम मुक्ति की डुंडी ।
हुए उन्मुक्त सब नेता, 'सचिव मण्डल मिशन' आया ।
उगी लाली दिशा पूरब चतुर्दिक हर्ष नव छाया ।।
मिशन से चल पड़ी वार्त्ता, न हल कोई निकल पाया ।
मुहुँमुह लीग ने हठ ठानकर हर प्रश्न उलझाया ।।
चुनावो मे इधर कांग्रेस ने भारी विजय पायी ।
स्वयकृत सविधान सभा प्रथम अस्तित्व में आयी ।
'नही शास्त्री सदृश कोई चुनावी सगठन प्रज्ञा ।'
मिली नर-पारखी 'गोविन्द बल्लभ पत' से सज्ञा ।।
'इन्ही के बल यहाँ कांग्रेस देश-प्रदेश मे जीती ।
इन्ही की ज्योति पाकर अन्ध द्विविधा की घडी बीती ।।
चिढ़े लीगी, चली बह साम्प्रदायिक रक्त की धारा ।
मनुज ने हा! मनुज को धर्म के आधार पर मारा ।।
चले गांधी अकेले ही अहिंसा ने विजय पाली ।
वही उजडा हुआ बसने लगा फिर से 'नोआखाली ।।
हुई पजाब मे भी क्रूर पुनरावृत्ति हिंसा की ।
विभाजन के लिए 'माउण्ट बेटन' ने ऽनुसशा की ।।
मिली स्वाधीनता खडित, हुए दो भाग भारत के ।
बँटी पूँजी, बँटी सेना बँटे भू-भाग भारत के ।।
बँटे परिवार भारत के, बँटे इतिहास भारत के ।
विभाजन के क्षणो से बँट गये ससार भारत के ।।

कटी पर दासता की बेड़ियाँ स्वाधीन रवि चमका।
सुनहला भाल भारत-भूमि का सौभाग्य भर दमका।।
सदियों के पश्चात् यह आया सुख का भोर
शास्त्री दम्पति हर्ष से होते आत्म विभोर।
रसा अपनी, गगन अपना।
दिशा अपनी, पवन अपना।।
निशा अपनी, दिवस अपना।
उषा अपनी, उदधि अपना।।
अहा ! कितना मधुर अपना।
नगर अपने, प्रहर अपने।
कमल अपने, कुमुद अपने।।
अचल अपने, सचल अपने।
विभव अपने, विजन अपने।।
अहा ! कितने मधुर अपने।
"मुक्त गगन में लहरे ललिते ! आज तिरंगा मुक्त।
आज हिमालय मुक्त आज है अपनी गंगा मुक्त।।"
"नाथ ! आज हर भारत वासी मुक्त सकल पुर ग्राम।
मुक्त पर्व की इस बेला को शत-शत बार प्रणाम।।

वसुन्धरा पर मानव जन्मा सदा परम स्वाधीन।
किन्तु बना उसका जीवन सर्वत्र यहाँ आधीन ।।
स्वीकारे कितने ही बन्धन सुख पाने के हेतु।
पहुँचा दे कोई मंजिल तक बना न ऐसा सेतु ।।
बंधन के मृग-जल में फँस फँस हुआ दुखो से युक्त।
सुखी यहाँ मानव उतना ही जितना बन्धन मुक्त ।।
नैतिकता, विधि, मर्यादाएँ सदा न बंधन भार।
बंधन वही कि जिसको आत्मा बंधन कहे पुकार ।।
मानव को जब-जब स्वतंत्रता की होती अनुभूति।
मानस मे उल्लास उमड़ता पाकर आत्म- विभूति ।।
स्वतंत्रता का जग में रहता उच्च सदा ही मान।
स्वर्ण-वर्ण से स्वतंत्रता का अंकित हर आख्यान ।।
स्वतंत्रता के क्षण ही मानव के सच्चे इतिहास।
शेष समय तो मानवता का एक मात्र परिहास ।।
जब स्वतंत्रता का मंगलमय लिए हुए वरदान।
उगा यहाँ पन्द्रह अगस्त का पावन स्वर्ण बिहान ।।
विहँस पडा भारत का कण-कण जाग उठा इतिहास।
जन मानव मे उमड चला नव नैसर्गिक उल्लास ।।
मंदिर-मंदिर घण्टो की ध्वनि मस्जिद, उठी अजान।
माथ-नमन गुरुद्वारे, गिरजा मे गूँजे प्रभु-गान ।।
अखिल राष्ट्र निज मना रहा वह स्वतंत्रता का पर्व।
एक पर्व मे समा गया सारे पर्वों का गर्व ।।
शास्त्री जी के हर्ष-तोष का आज न कोई पार।
सौरभ से भर गया आज उनके उर का संसार ।।

बडे चाव से स्वयं सजाया भावों भरा निवास।
सुरुचि, स्वच्छता, सुव्यवस्था का खिला मनोहर हास ।।
बँधे द्वार पर राष्ट्र-पताकाओं के वन्दनवार।
लहराता ध्वज चक्र तिरंगा ऊपर मगल सार ।।
कुसुम, सुमन, हरि ने पहने थे खादी के नव वस्त्र।
टोपी शिरस्त्राण सी, कर में उच्च तिरगा शस्त्र ।।
बाल-सैनिको की यह टोली कुछ मित्रो के साथ।
गाँधी की जय बोल रही थी उठा-उठाकर हाथ ।।
रीत चुकी थी आज दासता की घड़ियां मनहूस।
स्वतन्त्रता की अगवानी को निकला बाल जुलूस ।।
'अमर रहे पन्द्रह अगस्त' यह स्वतन्त्रता का योम।
भारत माता की जय-जय' से लहर रहा था व्योम ।।
'झडा ऊँचा रहे हमारा' गूंजा झडा-गान।
'विजयी विश्व तिरगा प्यारा' गौरव भारती तान ।।
घर में ललिता जी ने साजा धूप आरती थाल।
भारत माता के अभिनन्दन मे नत उनका भाल ।।
स्वतंत्रता की दिव्य आरती ललिता रही उतार।
जन-गण-मन के स्वप्न हो गये आज पूर्ण साकार ।।
सुजलां सुफलां शस्यश्यामलाँ मुक्त मातरम् गीत।
कोटि-कोटि कण्ठो से फूटा वह अवरुद्ध अतीत ।।
हर भारत-वासी का ऊँचा आज जगत मे भाल।
मूल्यवान हो गये मुक्त हो भारत मां के लाल ।।
ग्राम-ग्राम मे नगर-नगर में स्वतन्त्रता की धूम।
मानस-मानस उछल-उछल उल्लास रहा नभ चूम ।।

आज 'नई दिल्ली, की महिमा बढी अपूर्व अनूप।
सुषमा अकथ राजधानी की क्षण-क्षण नव-नव रूप ।।
लाल किले पर आज तिरगा फहरा पहली वार ।
एक नया इतिहास उठा मुख देख रहा ससार ।।
एक नया उल्लास भरा जग जागा पहली बार ।
एक नया विश्वास भरा मन महका पहली बार ।।
आज लिए कुछ और कान्ति ही आया कनक प्रभात ।।
आज सुनहली किरणो की भू पर उतरी बारात ।।
धीरे-धीरे आज पवन कह जाता मन की बात ।
आज बनस्पतियों के पुलकित थिरक रहे कल गात ।।
लगे मनोरम छाये बादल, लगी मनोरम धूप ।
नयन-नयन से झाक रहे स्वर्णिम सपनों के रूप ।।
अच्छा लगे गगन मे खग-कुल का उन्मुक्त बिहार ।
मधुर रागिनी की स्वर-स्वर मे गूँज रही झकार ।।
रिमझिम-रिमझिम बूदे जैसे अमृत-भरी बौछार ।
तन के उपवन, मन के फूले सुमन-सुरभि-सभार ।।
भरा वेग नदियो मे ऊँचे स्वर भर जले प्रप्रात ।
उठा-उठा सर लगे देखने गिरि, सुषमा अवदात ।।
कानन-कानन में हरियाली, आनन-आनन ओप ।
अभिधा में लक्षणा व्यजना के सजते आरोप ।।
आज चद्रिका के ससपर्शों में शीतल अनुभूति ।
आज सितारो के नयनो मे जागी ज्योति-विभूति ।।
भासा आज उदधि के तल मे रत्नाकर का सत्य ।
प्रथम बार लहरों का झंकृत हुआ मांगलिक नृत्य ।।

आज खिली अपनी क्षमता के अधरों पर मुस्कान ।
प्रथम बार अपनी भाषा पर हुआ हमें अभिमान ॥
अपना लगा आज भारत को धर्म, देश, संसार
मन-मन में उमड़ा जन-जन के लिए अपरिमित प्यार।
मन अच्छा तो सब अच्छा है, मन का ही संसार ।
मन ही सारे कार्य कलापों का प्रेरक आधार ॥
मन की ही अभिव्यक्ति जगत में होती रूपाकार ।
भूत, भविष्यत्, वर्तमान का मन ही रचनाकार ॥
भारतीय-मन स्वतंत्रता का था पावन वरदान ।
देख रहा था कण-कण में सुन्दरता की मुस्कान ॥
क्रमशः होने लगे दासता के युग-चिह्न विनष्ट ।
भूले 'शास्त्री-दम्पति' तन के मन के सारे कष्ट ॥
प्रसन्नता का मंजुल वातावरण चतुर्दिक व्याप्त ।
मन था उनका देश-सुराज के भावों से परिव्याप्त ॥
कहा एक दिन शास्त्री जी ने "पूज्य हमारे 'पंत ।
प्रिये ! बुलाया मुझे उन्होंने है 'लखनऊ' तुरन्त ॥
"आप न जायें कहीं, नाथ ! कर लें कुछ दिन विश्राम ।
स्वस्थ रहे तन तो फिर करना सेवा के आयाम ॥,'
"तन तो मन का है अनुगामी यदि मनो बल पूर्ण ।
तन का रोग न बने मानसिक फिर औषधि क्या चूर्ण ?
स्वतंत्रता-संग्राम हमारा मन की ही तो जीत ।
तन की चिन्ता करो न, मंगल मन के गाओ गीत ॥
शिव संकल्पों वाले मन का तन रहता नीरोग ।
मन में अशिव भाव यदि,तनका भी फिर क्या उपयोग ॥

"किन्तु न क्या तन के माध्यम ही मन होता साकार ।
स्वस्थ मन-स्थिति पूर्ण स्वस्थ तन में पाती आधार ।।
तन को कब मै अस्वीकारता प्रिये ! किन्तु मन श्रेष्ठ ।
तन को अधिक महत्ता देने मे जीवन का नेष्ठ ।।
तन की सज्जा रग-बिरगे आभूषण परिधान ।
तन की सुविधा मे ही अन्वेषण-रत यह विज्ञान ।।
मन की सज्जा किन्तु सद्गुणो से होती अम्लान ।
गाये जाते मन के ही, तन के न कभी आख्यान ।।
भूल रहा जग मन के शुभ सतुलन पक्ष का ध्यान ।
मन की जब साधना उपेक्षित, टूट रहा तन-यान ।।
ननु-नच का फिर प्रश्न कहाँ यह तो सीधा आदेश ।
प्रिये ! चले लखनऊ, छोड अब तो प्रयाग का देश ।।"
"किन्तु चलेगा खर्च वहाँ कैसे सोचे, हे नाथ ?
घर की बात, यहाँ ही सिकुडा रहा न कितना हाथ ?
वहाँ राजधानी प्रदेश की अति होगा व्यय-भार ।
जांय न, रहकर करे यही से सेवा, देश-सुधार ।।"
"किन्तु मिलेगे वहा साल-छै सौ रुपये प्रतिमास ।"
सुन यह ललिता जी के अधरो पर झलका उल्लास ।।
"तो फिर चलिये नाथ!" "प्रिये! पर यह कैसा व्यवहार?
पैसे को कब से महत्व देने का बना विचार ?"
"चिन्ता अपनी नही नाथ ? यह साथ लगा परिवार ।
इनके प्रति दायित्व हमारे कुछ इनके अधिकार ।
सुख कब जाना इन बच्चो ने मिली विवशता भेट ।
दूध-मलाई दूर, मिला कब भोजन ही भर पेट ।

आप जेल मे रहे प्रायशः कहा नही प्राणेश !
कभी-कभी भौरी ही खाकर सोये ये प्राणेश !
बचपन हँसी खेल के दिन है चिन्ताओं से दूर।
किन्तु हाय रे! इन बच्चो का बचपन ही मजबूर ।।
कैसे कटे कष्ट के वे दिन किन-किन के सहयोग ।
स्मृति आये भर आती आँखे, सुखी रहे वे लोग ।।
मात्र इन्ही के लिए मोहवश बोल उठा अपनत्व ।
मेरे लिए जहां, जैसे भी, आप वही सर्वस्व ।।
अस्तु, कटे संकट के दिन वे, खिन्न न हो हे नाथ ।
मेट न पाया कोई अब तक लिखा हुआ जो माथ ।।
मेरे तो तन, मन, धन सब कुछ एक आप ही नाथ !
मेरी तो बस चाह 'आपका जीवन भर का साथ ।।"
"प्रिये! कष्ट के बिना न जग मे कोई उच्च विधान ।
उच्च ध्येय के लिए कष्ट ही जीवन में वरदान ।।
मत समझो लखनऊ सुखो की होगी कोई सेज।
बच्चो की तो अपनी दुनियाँ कभी न हो निस्तेज ।।
कष्ट-रुदन को कैसे भोगा करते बच्चे जीत ।
सीख योग बचपन के जग का यह मंगल सगीत ।।"
"जैसी इच्छा, चलें लखनऊ, क्षमा करे हे नाथ ।
सेवा मे रह हमें शूल भी फूल आपके साथ ।।"
सभा सचिव हो, गये लखनऊ मे फिर किया निवास ।
प्रगति द्वार की खुली अर्गला आगे नवल विकास ।।
शास्त्री जी को मिला सदा ही पत्नी का सहयोग ।
इसीलिए कर सके देश हित क्षण-क्षण का उपयोग ।।

एक बार शास्त्री जी ने 'बापू' को देखा खिन्न ।
डूब रहा था उनका मानस, जल आवर्त विभिन्न ॥
घिरा सघन घन के घेरे मे धँसता हो ज्यो इन्दु ।
पूछा कारण, ढुलक पडे बरबस ही कुछ जल-बिन्दु ॥
"प्रिय शास्त्री! थक गया लगे अब तो अपना यह गात ।
मन की मन मे ही रह जाती आज मिशन की बात ॥
रहा नही इस तन का मानों अब कोई उपयोग ।
हार गया सब दॉव कि आये कुछ ऐसे सयोग ॥"
"बापू आज निराशा की ये बातें कैसी, दीन ।
पडा न करती कभी प्रदर्शक पथ की प्रभा मलीन ॥"
"कभी न, शास्त्री! सुनो निराशा फटकी मेरे पास ।
निहित कर्म में ही फल मेरे जीवन का विश्वास ॥
आशावादी हर कठिनाई मे अवसर ले ढूँढ़ ।
हर अवसर मे कठिनाई का अनुभव करते मूढ ॥
मै तो आशाबादी पर घटनाओ पर क्या जोर ।
प्रेम-अहिंसा की हाथो से छट रही अब डोर ॥
यह कांग्रेस, चाह मेरी थी, हो जाती अब भग ।
राजनीति से दूर रहे यह बन सेवा का अंग ॥
किन्तु सभी पर चढा हुआ कुछ और-और ही रग ।
भग न सस्था हुई शांति ही मेरे मन की भग ।
देख रहा, युग देखे, होता प्रभुता की गति बक ।
राम न करे कि दे यह सस्था माथे एक कलक ॥
पर बापू ! क्या भग न देता एक और बिखराव ।
गति देने को प्रथम अपेक्षित एक सबल ठहराव ॥

"सबल कहा ? पद की लिप्सा मे बिखरेगा ठहराव ।
गलत न समझे कोई मुझको कसक रहे है घाव ॥
हूल रहा बँटवारा, उर की खोई सारी शान्ति ।
हिन्दू–मुस्लिम बन्धु–बन्धु के बीच खडी है भ्रान्ति ॥
सभी एक ईश्वर की रचना खुदा कहे या राम ।
सबमे एक उसी की सत्ता फिर क्यो भेद तमाम ?
सब मानव है पर्व सभी के होली हो या ईद ।
वही भक्त भाषा के अन्तर से बन जाय मुरीद ॥
आपस मे सघर्ष–बैर की सीख न देता धर्म ।
मानव–मानव रहें प्रेम से यही धर्म का मर्म ॥
किन्तु धर्म के नाम करे अनुयायी ही सघर्ष ।
दुनियाँ की छोड़ो, क्या यह ही मेरा भारत वर्ष ॥
अपनी–अपनी दिशा बनाये भाग रहे हैं लोग ।
सह अस्तित्व न जागा मन में विलग–विलग सहयोग ॥"
"विडम्बना यह, बापू! सुख का स्वार्थ भरा उपयोग ।
दुख सकट के अवसर ही बस, यहाँ एक्य सहयोग ॥"
"किन्तु न होगा, प्रिय शास्त्री! इससे जग का कल्याण ।
राह बदलनी ही होगी तब होगा युग–निर्माण ॥
इसीलिए तो हमे अपेक्षा इस तन की, हे पूज्य !
मान रहा जग शक्ति अहिंसा की तुमसे ही पूज्य !
माना, ऐसे बहुत जिन्हे प्रिय अपने-अपने स्वार्थ ।
तो भी सत्य, सभी के भीतर छिपा हुआ परमार्थ ॥
दे हमको, हे बापू ! मार्ग प्रदर्शन, आशीर्वाद ।
दूर करें हम स्वार्थ, घृणा, हिंसा के कलुष विषाद ।"

"प्रिय शास्त्री ! मेरे सपनो का चर्चित भारत वर्ष ।
रामराज्य के कलित क्रोड मे जन-जन का उत्कर्ष ॥
प्रेम-अहिंसा-सत्यपूर्ण मेरा अभिलषित समाज ।
तुम सबकी निष्ठा के बल ही साजे हैं ये साज ॥
गावो का यह देश सदा से कृषि उद्योग प्रधान ।
सोने की चिडिया कहलाया वणिज, शिल्प के ज्ञान ॥
भारत का उत्थान माँगता लघु उद्योग विकास ।
नही बड़े उद्योग हेतु साधन भी अपने पास ॥
भौतिकता को नही देश मे मिला कभी सम्मान ।
सग्रह नही, त्याग से होती भारत की पहचान ॥
मानवता के लिए जिया यह अपना भारत देश ।
रावण नही, राम बनवासी बने यहाँ अखिलेश
प्रासादों मे कब बसते है मानवता के प्राण ।
एक कुटी ही कर सकती है भारत का निर्माण ॥
तुम लघुकाय किन्तु तुममे पलता व्यक्तित्व विराट ।
उज्जवल एक भविष्य तुम्हारे देखू लिखा ललाट ॥
मुखर तुम्हारे स्वर-स्वर मे भारत की आतमा धीर ।
मानवता के लिए तुम्हारे हृदय जागती पीर ।
वाद-विवाद-कूल के तुम हो स्वस्थ समन्वय सेतु ।
भौतिक अन्तंजगत मिलन के बनो सहायक हेतु ॥
देश विश्व को बड़ी-बड़ी आशाएँ तुमसे लाल ।
बढो प्रगति पथ पर संतत् तुम माँ को करो निहाल ॥"
शास्त्री जी लौटे प्रणाम कर, था पुलकित हर अग ।
दर्शन, मार्ग-प्रदर्शन पाया आशीषों के सग ॥

जागा प्रबल आत्म बल का अन्तर मे नवल प्रकाश ।
पख मिले निष्ठा को मानो उड़ने को आकाश ॥
इधर हाथ में नवल सृजन के निहित हुए अधिकार।
उजड़े नन्दन मे सपनों के फूल उठे कचनार।
उधर प्रगति के पथ अडे थे बडे-बडे पाषाण।
बनकर प्रश्न चिह्न था सम्मुख खड़ा देश-निर्माण ॥
लुटा, मिटा, सब कुछ बिखरा सा अस्त-व्यस्त हर नीड।
बढी समस्याओ की साधनहीन धरा पर भीड॥
घृणा, स्वार्थ, भ्रम वश स्वदेश का बटन जन बदलाव ।
बहा साम्प्रदायिक हिसा का एक सिधु बन घाव ॥
मिली इसी मे बापू के प्राणो की गंगा-धार।
छिना प्रकाश, अहिंसा का लुट गया भरा ससार ॥
महाशोक ! हा, महाशोक !! जन-जन के व्याकुल प्राण।
मिटा एक मानव के कर, हा ! मानवता का त्राण ॥
दिशा विश्व को देने वाला रहा न ज्योति-स्तम्भ ।
मगल पथ के प्रथम चरण का हा ! कैसा प्रारम्भ ।
रामराज्य के स्वप्न-कमल पर क्रूर तुषारापात ।
ज्योति-कुज पर तमस-पुंज का हा ! घातक आघात ॥
बिलख-बिलख बरबस हिंसा भी रोई उस दिन गूढ ।
जहाँ रहा जो वही रह गया किंकर्तव्य विमूढ ॥
यह सुन शास्त्री जी को कुछ क्षण रहा न तन का ध्यान ।
टिकी शून्य पर दृष्टि, दीर्घ उच्छवास बदन-छबि म्लान ।
दुसह परिस्थिति मे भी जिसने खोया कभी न धैर्य ।
बिलख रहा था वही आज सब खोकर मन का स्थैर्य ॥

कर्मों का मेला जीवन में लगा रहे हर याम
लाभ–हानि के सौदे होते गुण–अवगुण के दाम ॥
परहित सदा समर्पित होती अच्छी जीवन–पण्य ।
जहाँ स्वहित ही केन्द्र क्षुद्र वह जीवन–पण्य नगण्य ॥
बापू का जीवन था परहित मगल काव्य अनूप ।
नकी पर–दुख-कातरता मे निजता थी तद्रूप ॥
जीवन की सार्थकता का परहित मे छिपा विधान ।
क्षण भगुर यह देह, अमरता परहित का वरदान ॥
परहित जो जीता, मर कर भी कभी न मरता वीर ।
ऐसी एक मृत्यु बन जाया करती जग की पीर ॥
बापू की यह मृत्यु बन गई जग का हाहाकार।
भौतिक देह न शेष किन्तु यश, गुण, शुभ, कर्म अपार ॥
राजघाट पर चिर निद्रा मे सोया योगी शान्त ।
जाग रहा उनके विमलादर्शों का बस दृष्टान्त ॥
उनकी मृत्यु न सोचनीय है सोच स्वयं ही व्यर्थ ।
जीवन जो दे सका नही, वह मृत्यु दे गई अर्थ ॥
सच्ची श्रद्धाञ्जलि, उनके सपने करना साकार ।
उनके शुभ आदर्शों का हो जीवन में व्यवहार ॥
बापू के आदर्शों का ही व्रत ले लौटे मौन ।
श्रम, सकल्प, लगन, के बल व्रत पूरा हुआ न कौन ।
सभा सचिव थे कई किन्तु शास्त्री की बात अनूप ।
रहा कार्य करने का उनका अपना अलग स्वरूप ॥
नये रक्त मे शक्ति यथा सागर मे प्रबल हिलोर ।
बढ़ी नापने निज क्षमता की सीमा मे हर छोर ॥

रात न जानी दिवस न जाना, पूज्य पंत के साथ ।
डटे रहे दायित्व पूर्ति मे बने दाहिने हाथ ।।
परखा व्यक्तित्व उभरता, रहे पारखी पंत ।
हीरा कभी न छिप पाता है आभा स्फुटित अनन्त ।।
नही खुले थे अब तक जिनके कभी प्रशंसा–बोल ।
वे कठोर–मन पंत सहज ही बोल पड़े मुख खोल ।।
"लालबहादुर शास्त्री यह प्रियदर्शी, नित श्रमशील ।
निष्ठावान, विवाद मुक्त, अति विश्वसनीय सुशील ।।
इनमें प्रतिभा–क्षमता का है मणि—काञ्चन-संयोग ।
क्यो न प्रशासन मे हो इनका और अधिक उपयोग ।।"
मिला मंत्रिपरिषद मे इनको शीघ्र प्रतिष्ठित भाग ।
यातायात, पुलिस, गृह जैसे सौपे गये विभाग ।।
राजनीति मे शीघ्र प्रगति के उदाहरण है अल्प ।
अभी उठे, गिर गये सदा, को रहा न अन्य विकल्प ।।
किन्तु प्रगति इनकी तो जैसे कल्प–कल्प पर कल्प ।
उठते ही गये, उठे यदि हुआ विरोध न अल्प ।।
सत्ता द्वारा किये इन्होने अमित लोक हित काम ।
और संगठन मे 'नेहरू' के लिए रहे बलराम ।।
फैल रहा था नाम दिनोंदिन बढता–आदर मान ।
कार्यों से ही होती जग मे मानव की पहचान ।।
रही नही इस मानव को आदर पाने की भूख ।
चिन्ता एक कि नवल सृजन की पौध न जाये सूख ।।
बड़ा नही अपने को समझा सबके सद, समान ।
प्रथम नागरिक, पीछे मंत्री बना रहा यह भान ।

गये कार एक बार जब दौरा करने आप।
गति की सूई स्वयं की सीमा मंद रही थी नाप ।।
किन्तु हो गयी छोटी सी दुर्घटना फिर भी एक।
अग्र पार्श्व से टकरा बालक गिरा सडक पर एक ।।
वाहन से बचते बालक की दिशा न प्राय: ज्ञात।
चालक चलता अटकल के बल कुछ अनुभव की बात ।।
शास्त्री जी ने देखा यद्यपि साधारण सी चोट।
दुर्घटना-दुर्घटना ही है' सोचा 'करूं रिपोर्ट ।।
'विधि का शासन' प्रजातंत्र का एक प्रमुख आधार।
होता नही किसी को भी विधि-लघन का अधिकार ।।
पैदल ही चल थाने पहुचे, बैठे थे दीवान।
साधारण सा वेश समझकर कोई इन्हे किसान ।।
कहां डांटकर :'बैठो उधर न होगी अभी रिपोर्ट।
या कि यहां से भगो" सुना तो अन्तर उठा कचोट ।।
हाथ जोडकर किया निवेदन, दिया न फिर भी ध्यान।
अनुनय से भी नही पसीजा थाने का भगवान ।।
'फर्ज आपका' कहा कि आखो मे मचता तूफान।
'थानाध्यक्ष कहा 'जब पूछा' जला-भुना दीवान ।।
कोपा, अपशब्दो की करता हुआ एक बौछार।
मानो फूटे किसी पटाखे से स्फुलिंग दो चार ।।
क्या होता तुम नही जानते अभी पुलिस का फ़र्ज।
ठीक कर रहा अभी तुम्हारे फर्जों की मैं नब्ज ।।
कि आजादी क्या मिली कि सबको हुआ बुद्धि का कब्ज।
किन्तु हमारी दवा ठीक कर देगी सबका मर्ज।

मन ही मन मुस्काते सुन-सुन, 'क्या उत्तम उपचार ।
करतो अब भी पुलिस नागरिक से कैसा व्यवहार ।
होती सेना, पुलिस; प्रशासन की दो बाहु विशाल ।
रक्षा और व्यवस्था के दायित्व इन्ही के भाल ।।
सेना भिडती बाह्य शत्रु से सीमाओ के पार ।
जो कानून न माने भीतर पुलिस करे उपचार ।।
सबलो से निबलो की रक्षा, विधि-पालन का भार ।
मिले पुलिस को इसीलिए रहते व्यापक अधिकार ।।
यदि इसके बल पुलिस जमाये जनता पर आतक ।
सोचनीय वह पुलिस देश के माथे एक कलंक ।।
जनता अपना कार्य करे विधि अन्तर्गत निर्बाध ।
जनता सोये रात घरो मे सुख की नीद अबाध ।।
पुलिस प्रशसा योग्य जहाँ अनजाने ही अपराध ।
दण्ड शिकञ्जे से कोई बच सके न कर अपराध ।।
रहे पुलिस कर्तव्य-सजग यह दशा तभी संभाव्य ।
केवल तभी रचा जा सकता श्रेष्ठ व्यवस्था-काव्य ।।
किन्तु पुलिस मे जहा पल रहे हो ऐसे दीवान ।
गगन-कुसुम ही किसी व्यवस्था मे कोई उत्थान ।।
शासक मनोवृत्ति की अपनी पुलिस बनी है दास ।
एक स्वतन्त्र देश सी उसके सेवा-वृत्ति न पास ।।
पुलिस जनो के प्रति भय अब भी जनता के मन व्याप्त ।
जनता का विश्वास पुलिस को करना होगा प्राप्त ।।
इसके लिए अपेक्षित वातावरण नया, नव प्राण ।
तभी अराजकता, अशान्ति; अव्यवस्था से हो त्राण ।।

देख—देख मुस्काते इनको तड़प उठा दीवान।
'ऐसा साहस थाने पर है थाने का अपमान ।।,
सोच, बढ़ा ज्यों ही आगे वह, आये थानाध्यक्ष।
देखा मान्य हमारे मन्त्री थाने पर प्रत्यक्ष ।।
ज्ञात हुआ यह, लगा कांपने नख-शिख तक दीवान ।
दौड़ गिरा शास्त्री जी के चरणों मे तज अभिमान ।।
घटना घटी एक थाने पर, पर सब हुए सचेत।
आ धमके किस रूप, कहाँ, कब कठिन कर्म का प्रेत ।।
शास्त्री जी ने सोचा मन मे एक सरल उपचार ।
हो सकता है कार्य व्यवस्था मे कुछ अधिक सुधार ।।
'करे निरीक्षण अकस्मात यदि अधिकारी स्वयमेव।
तो दायित्व-पूर्ति मे कर्मिक रहे सतर्क सदैव ।।
अधिकारी को मिले न चाहे स्वागत, सुविधा मान।
कर्मिक किन्तु स्वकर्म निष्ठ हो यही सही सम्मान ।।
उच्च पदों पर हो नियुक्त उत्तम चरित्र के व्यक्ति।
आधीनो मे सहज जगे दायित्व पालिका शक्ति ।।
लौट बनायी एक योजना मे फूंके नव प्राण।
उभरा उन आदर्शों पर कुछ थानो का निर्माण ।।
व्यापक स्तर पर किया संगठित 'रक्षा दल प्रान्तीय।
बना यही आगे जन सेना रक्षा पंक्ति तृतीय ।।
नयी प्रेरणा भर-भर बदला पुलिस वृत्ति का रूप।
शान्ति-व्यवस्था के सतर्क प्रहरी का खिला स्वरूप ।।
किया सदा कानून-व्यवस्था का समुचित सम्मान।
सुधा बांटते रहे जगत को स्वयं गरल का पान।

किया सदा कानून-व्यवस्था का समुचित सम्मान।
सुधा बाँटते रहे जगत को स्वयं गरल का पान।।
सहे कष्ट पर कष्ट, उठाया कभी न अनुचित लाभ।
आँधी मे भी रहा प्रकाशित दीपक यह अमिताभ।।
कानपूर मे एक बार जब हुआ क्रिकेट का मैच।
छात्र हुए विक्षुब्ध, पुलिस के देख बैंच के बैंच।।
शास्त्री जी से आश्वासन मिल गया, मिटा आवेश।
'नही लाल पगड़ी कोई कल यहाँ दिखेगी लेश।।
दिवस दूसरे परिवर्तित था लाल पुलिस का वेश।
पुलिस भरी थी किन्तु श्वेत पगड़ी का था परिवेश।।
समझ गये सब छात्र चतुर मंत्री जी का परिहास।
धन्य युक्ति कह मन ही मन हँस पडे भरा उल्लास।।
कीर्तिमयी परिवहन क्षेत्र मे बनी आपकी देन।
चले आप बन गई राह, युग चिह्न युगीन मिटे न।।
किसी क्षेत्र की प्रगति के लिए साधन जहाँ अनेक।
यातायात प्रणाली उनमे से प्रधान है एक।।
क्षेत्रो मे परिवहन साधनो से वितरण—विस्तार।
विविध शिराओं से अंगो मे यथा रक्त सचार।।
जितना ही उत्पादन के वितरण का हो विस्तार।
किसी क्षेत्र की उन्नति मे उतना ही उच्च उभार।।
सीमित पर, परिवहन यहाँ व्यक्तिगत क्षेत्र आधीन।
लाभ-लोभ की मूल-मुलैयों मे हर प्रगति विलीन।।
वितरण के स्वामी बन बैठे कुछ मुट्ठी-भर लोग।
उत्पादक ही उत्पादन का कर न सकें उपभोग।।

शास्त्री जी ने अपने ढंग से सोचे कुछ उपचार।
सर्वप्रथम परिवहन व्यवस्था मे ही किये सुधार ।।
वाहन चढ राष्ट्रीयकरण के दौड़ा यातायात।
सार्वजनिक क्षेत्रान्तर्गत हो गई और ही बात ।।
दिन-दिन अब परिवहन साधनो मे होते विस्तार।
नई-नई नित सुविधाओं के खुलते जाते द्वार ।।
एक दिवस, चिन्तन-रत मन मे कौधा एक विचार।
'नारी को भी दिये जाँय कुछ पुरुष सदृश अधिकार ।।
नारी-पुरुष, समान शक्ति से दोनो ही सयुक्त।
जीवन-रथ युग चक्र सदृश ये सम गरिमा से युक्त ।।
इस जग मे नारी है अनुपम प्रबल प्रेरणा पुंज।
एक शक्ति यह उठा गिरा दे भाव-भावना कुंज ।।
नारी के सहयोग बिना भरता न पुरुष का पात्र।
बिना शक्ति के यथा अधूरे रहते शिव शव मात्र ।।
यह रागिनी इसी पर निर्भर मूक्त, पुरुष के राग।
सोयी यह अबला ही सबला बन जाती जब जाग ।।
सदियो से अप्रयुक्त शक्ति नारी ही रही प्रसुप्त।
निहित शक्ति अवसर पा जागे हुई न लेश विलुप्त ।।
किसी बात मे कही पुरुष से नारी कम न कदापि।
अभी अपेक्षित कुछ विशेष आरक्षण इन्हे तथापि ।।
इस विचार का भी प्रायोगिक स्तर पर किया प्रयुक्त।
महिलाएं कुछ 'कन्डक्टर 'पद' पर की गई नियुक्त ।।
पग था एक साहसिक सहसा चकित हुए सब लोग।
नारी को आगे लाने का उभरा नवल प्रयोग ।।

जगे बन्दिनी नारी मे इससे अभिनव संस्कार ।
नव विश्वास भरी नारी बढ चली द्वार के पार ।।
उधर ढूँढता रहा दिशाएँ नई, देश निर्माण ।
नेतृ वर्ग मे जाग रहे थे नव प्रयाण, नव प्राण ।।
स्वतंत्रता के आगे का कैसा हो भारत वर्ष ।
दिशा कौन अपनाए सीमित साधन मे उत्कर्ष ।।
गाधी जी के बाद लगी सबकी 'नेहरू' पर दृष्टि ।
एक 'जवाहर' सब प्रश्नो के उत्तर बने समष्टि ।।
देश उन्ही के निर्देशन में चला उन्ही की चाल ।
जन–जन का पा स्नेह लगी जलने विश्वास मशाल ।।
रचता रहा स्वदेश सृजन का नित्य नवल इतिहास ।
सम सामयिक समस्याओं के तल मे हंसा विकास ।
संविधान निर्मात्री परिषद द्वारा बना विधान ।
गणतंत्रात्मक लोकतंत्र का मंगल तना वितान ।।
जनता का जनता के द्वारा जनता के हित तंत्र ।
जनता की कल्याण– कामना का साधक जन तंत्र ।।
श्रेष्ठ वही शासन की पद्धति शासन जिसका श्रेय ।
न्याय व्यक्ति को, हित समष्टि को जहाँ मिले सन्धिधेय ।।
ऊँची रहे जहाँ शासन मे जनता की आवाज ।
जन–जन स्वयं आत्म शासित हो सच्चा वही स्वराज ।।
भारत के नव संविधान मे यही भावना मूल ।
श्रेष्ठ गुणो का हुआ समन्वय भारत के अनुकूल ।।
मिले मूल अधिकार सभी को खुले न्याय के द्वार ।
पके राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक समताधार ।।

राजा प्रजा न कोई अब तो सब नागरिक समान।
'श्री पटेल' के एक्य विधायक हुए अमर अभियान ॥
देश-कोष की सरिता का रुक गया विदेश-प्रवाह
अपने धन की अपने हित मे बनी स्वयं ही राह
हर वयस्क को मुक्त मिला मत देने का अधिकार।
हुई केन्द्र मे प्रान्त—प्रान्त मे जनता की सरकार ॥
सविधान अपना स्वदेश मे लागू हुआ स्वतत्र
अमर रहे 'छब्बीस जनवरी' अमर रहे गणतत्र।
बना राष्ट्रपति प्रथम बार भारत का एक किसान।
जनता की झोली मे हँसता जन—जन का वरदान॥
दिशा—दिशा अभियान पर बैठ सृजन के यान।
नई ज्योति ले चल पड़ा भारत देश महान॥
गणतत्र दिवस की बेला।
शुभ सकल्पो का मेला॥
जन—जन के अन्तस्तल मे।
विश्वास जगा अलबेला॥
उमडा आशा का सागर।
लो भरी-भरी हर गागर॥
कल की कल्पना सुहानी।
शिल्पी हैं आगर—नागर॥
आशा भोर—किरण सी जग मे कचन भरती।
आशा सूत्र धारिणी सी नव मचन करती॥
आशा मधुऋतु सी उपवन में नन्दन भरती।
आशा शतपद सी नित श्रम का वन्दन करती॥

# सृजन आठवाँ सर्ग

जीवन एक पहेली सबसे नही सुलझती ।
जितनी ही सुलझाये उतनी और उलझती ।।
जग मे मानव के सम्मुख ऐसे क्षण आते ।
जबकि धर्म संकट मे कोविद भी पड़ जाते ।।
धीरप्रज्ञता की होती है तभी परीक्षा ।
संकट के क्षण दे जाते है उनको दीक्षा ।।
लालबहादुर शास्त्री बैठे सोच रहे थे ।
नख से बस धरती की धूल खरोच रहे थे ।
है यह कैसी विषम समस्या सम्मुख आई ।
दो युग-शिखरों पर मतभेद घटा घिर छाई ।।
एक शिखर पर 'टण्डन जी राजर्षि सरीखे ।
जिनसे हमने राजनीति के सरगम सीखे ।।
उत्तम जो कुछ भी है हममे श्रेय उन्ही का ।
आज बढे हम यह सब आशीर्वाद उन्ही का ।।
शिखर दूसरे पर 'नेहरू जी' पूज्य हमारे ।
राष्ट्र गगन के उदित अहर्निश शुभ ध्रुव तारे ।।
मूर्तिमान आदर्श हुए है जिनमे अपने ।
जिन पर आधारित अभिराम सृजन के सपने ।।
अपना दल उज्ज्वल भविष्य है बना देश का ।
आदर करते जन-जन जिसके यशी वेश का ।।
बढती खाई बीच निरन्तर इन दोनो के ।
लटक रही कांग्रेस बीच इन दो कोनो के ।।
उधर पूज्य टण्डन जी कट्टर स्व राष्ट्रवादी ।
इधर प्रकृतितः ही नेहरू जी उदारवादी ।।

प्रश्न नीति–निर्धारण के उलझे गहराये ।
अनायास ही दृष्टिकोण के ध्रुव टकराये ।।
मतभिन्नता विचार जगत की विशेषता है
पर मतभेदो मे विघटन है अनेकता है
उग्र हुए मतभेद कि स्वर्णिम सपने टूटे ।
पाल और पतवार नाव के दोनो छूटे ।।
आशा का पथ नही राजपथ, छलता रहता
पवन निराशा का सुदूर तक चलता रहता ।
आशा–दीप सँजोये जो आगे बढ जाते ।
पथ आँधी, तूफान नहीं उनको छल पाते ।।
दल व देश का मगल स्यात् चाहना होगा ।
यह मतभेद समाप्त हमे करना ही होगा ।।
शास्त्री जी ने भेट किया दृढ निश्चय लेकर ।
दोनो विन्दु तने थे अपने–अपने मत पर ।।
युग–विभूति दोनो ही बडे किसे समझायें ।
पड़ा धर्म संकट, न सूझते दायें–बायें ।।
तभी देश शास्त्री जी के भीतर का उमड़ा ।
बहा शीघ्र ही सभी धर्म सकट का कचडा ।।
पुनः पुनः वार्त्ता की सुदृढ विनीत स्वरो मे ।
अप्रिय सही पर कुछ हल आ ही गया करो मे ।।
टंडन जी ने त्याग पत्र दे दिया समिति से ।
रहे प्रथम ही स्वयं त्याग–सेवा परिमिति से ।।
उसदिन सबने शास्त्री जी को फिर पहचाना ।
नेहरू जी ने इस प्रतिभा का लोहा माना ।।

बोले शास्त्री जी से "अदभुत युक्ति-कुशल हो।
रहो हमारे साथ कि दल का हाथ सबल हो।"
"जैसा हो आदेश, उसी मे हर्ष मुझे है।
सीख सकूँगा पास पिता सी गोद मुझे है।"
नेहरू जी का अन्तस यह स्वर सुनकर उमड़ा।
हुए सजल दृग, कण्ठ भाव से गद्‌गद् घुमडा ।।
बढकर शास्त्री जी को अपने गले लगाया।
बापू की आत्मा ने होगा उपशम पाया ।।
शास्त्री जी ने गृहमंत्री पद त्यागा क्षण मे।
बनकर दल के महासचिव फिर कूदे रण मे ।।
प्रथम आमनिर्वाचन का था नाजुक अवसर।
भार संगठन का आ पडा इन्ही कंधो पर ।।
अब इनका दायित्व क्षेत्र सारा ही भारत।
भरे आत्म विश्वास, ध्येय हित हुए क्रिया-रत ।।
दौरा किया देश का फिर व्यापक तूफानी।
गाते जन-जन इनकी जन-सम्पर्क कहानी।
क्षेत्र-क्षेत्र था लालायित इनको सुनने को।
सुनकर इनके ही प्रत्याशी को चुनने को ।।
नये-नये कितने ही दल यद्यपि आ उभरे।
यत्र-तत्र दिखते आखिर जुगनू ही ठहरे,।
बनी हुई काग्रेस चन्द्रिका धवल, धरा की।
गाथा लिए सृजन बलिदानी परम्परा की ।।
मिले उसे जब शास्त्री जी से व्यूह—रचयिता।
पाती क्यो काग्रेस न आशातीत सफलता ।।

मिला केन्द्र मे सहज इन्हे सेवा का अवसर।
जबकि रेल परिवहन मन्त्रिपद आया कर पर ॥
कितनी ही थी जटिल समस्याएँ मुह बाए।
शास्त्री जी बन समाधान साधन से आए॥
युग विभाग का कोई पहलू स्यात् शेष हो।
इस प्रतिभा का जिसे मिला सस्पर्श नही हो।
विविध मिली सामान्य यात्रियो को सुविधाएँ।
कर्मचारियो के मन रही नही दुविधाएँ॥
लगन कार्य की जाग उठी सबके अन्तर मे।
भरा शक्ति-जल एक-एक निष्ठा-गागर मे॥
शास्त्री जी पर श्रेय न इसका किन्चित् आता।
पारस छू-कर लोहा भी सोना बन जाता॥
इस पारस ने कभी न अपने को कुछ जाना।
सादे और सरल जीवन में ही सुख माना॥
उच्च पदो पर रहे न सुविधा कोई चाही।
अपने जैसे आप रहे सेवा व्रत-राही॥
एक बार ऋतु ग्रीष्म, दिवस दोपहर जला था।
जलने के भय पवन कही जा दूर छिपा था॥
भीषण तपस, धरा पर सीधी किरणें पड़ती।
श्रम के बिना स्वेद की आकुल धारे बहती॥
बनी धधकती आग, प्रकृति रवा शीतल कणिका।
यथा नृत्य, सगीत, रूप से छलती गणिका॥
हर मुख सूखे, अधर तृषित, कुम्हलाया आनन।
छाया हो संकुचित ढूँढ़ती कोई कानन॥

तपता सूरज, जलती धरती, पथिक रुका कब ?
तन-मन चाहे थक जाये पर काम थका कब ?
अपने-अपने काम सभी को चेतन करते ।
आशा के कण चरणो मे अभिनव गति भरते ।।
जब स्टेशन पर गाडी आयी, यात्री दौडे ।
भूल गये किरणो के पडते तप्त हथौडे ।।
तन झोके सामान सहित डिब्बो के अन्दर ।
कुछ ही देर रुका करती गाडी स्टेशन पर ।।
रेल परिवहन मन्त्री शास्त्री जी भी आये ।
बैठ प्रथम श्रेणी के डिब्बे मे सकुचाये ।'
जब-जब इन्हे विशिष्ट मिली कोई भी सुविधा
हुआ सदा संकोच उठी मानस मे दुविधा ।
सोचा करते 'मन्त्री जनता का प्रतिनिधि है ।
जनता की सेवा ही उसकी कार्य-परिधि है ।।
वह जनता का अग, उगी का सेवक होता ।
है यह समुचित नही मिले उसको विशिष्टता ।।
जन-साधारण मध्य न मन्त्री रहे, चलेगे ।
उन कष्टो मे कभी न जब तक स्वयं पडेगे ।।
कैसे ज्ञान समस्याओ का उनको होगा ।
होगा भी पर बिना पीर के भाव न होगा ।।
बडे बड़े तो प्रायः उन्हें बुला लेते है ।
धन-साधन से अपने कष्ट सुला लेते है ।।
किन्तु दीन जनता को कौन पूछने वाला ?
राजकीय अधिकारी तो शासन मतवाला ।।

जनता का दायित्व न मंत्री ही यदि लें ।
बिडम्बना में प्रजातंत्र के अर्थ जलेंगे ।।
जब तक वातावरण नवीन न एक बनेगा ।
सेवा का सद्भाव न शासक हृदय जगेगा ।
जनता जब तक शक्ति न अपनी पहचानेगी ।
निज शासन का केन्द्र न अपने को मानेगी ।।
दास–वृत्ति से उसे न जब तक मुक्ति मिलेगी ।
नाव सृजन की अपने ही श्रम–बल न चलेगी ।।
हमें न तब तक प्रजातंत्र के लाभ मिलेंगे ।
यहा न तब तक निज सपनो के सुमन खिलेंगे ।।
टूटी तभी विचार श्रृंखला मंगल—मन की ।
यह क्या डिब्बे मे न उमस है कही तपन की ।।
पूछा निजी सचिव से तब किंचित् मुस्काकर ।
"क्या रहस्य, बाहर निदाघकर, यहां सुधाकर ?
"वहां प्रताप आपका, यहा आपकी छाया ।
(दृष्टि छिपा, स्वर दबा कहा) कूलर की माया ।।
"मेरे लिए आपने कूलर लगा दिया है ।
क्या तुम सबने मुझको निर्बल समझ लिया है ।।
यदि ये यो ही चल सकते जन–यात्री सारे ।
क्यो न रेल मंत्री चल सकते, कहो, तुम्हारे ?
हर डिब्बे मे कूलर लगा न सकते जब हम ।
क्या अधिकार कि भोगें कूलर की सुविधा हम ?
यहाँ सुरक्षा, समय बचत की नही विवशता ।
अनुचित मेरे लिए, अनावश्यक विशिष्टता ।।

अगले स्टेशन पर ही कूलर पृथक कराओ ।
चल न सकूँगा; उर मे उठती आग बुझाओ ।।"
किया प्रणाम सचिव ने मन ही मन मत्री को ।
रहने दिया मौन ही श्रद्धा-स्वर--तत्री को ।।
मथुरा आते ही जा कूलर पृथक कराया ।
प्रजातत्र का सच्चा मार्ग समझ मे आया ।।
ऐसे ही नाना प्रसग जीवन के इनके ।
जिनमे हर आदश बने व्यवहार सु-मन के ।।
शास्त्री जी का समय रहा जन--सुविधाओ का ।
प्रगति क्षेत्र मे नित मगलमय विविधाओ का ।।
नई--नई क्षितिजे विकाश की दिन--दिन छूता ।
उठा विभाग, बढ़ा निज उत्पादन का बूता ।।
किन्तु घटी जब एक रेल--दुर्घटना भारी ।
बीत गया वह समय कदाचित् मगलकारी ।।
'अरियालूर' निकट गति पर थी जब वह गाड़ी ।
पवन तरगो में लहराती जैसे साड़ी ।।
इठलाती सी धूम उगल उडती सी गाड़ी ।
छक्--छक्- छक् सगीत सुनाती बढती गाडी ।।
पटरी--तट की मर्यादा अनुसरती गाड़ी ।
सबको मंजिल देती स्वय अमजिल गाडी ।।
अगणित यात्री हर ड़िब्बे मे भरे हुए थे ।
हर मन मे मंजिल के सपने सजे हुए थे ।।
कोई बैठा बाते करता, कोई सोता ।
माँ का ध्यान बटाने को कोई शिशु रोता ।।

कोई बैठा बातें करता, कोई सोता ।
माँ का ध्यान बटाने को कोई शिशु रोता ।।
घिरा समस्याओ मे चिन्तारत तो कोई
कलित कल्पना के पर फैला उडता कोई
नयन किसी के बाह्य प्रकृति मे रमते जाते ।
और किन्ही के लिपि उपवन में उलझे नाते ।।
कितनो के ही लिए प्रतीक्षा आँख बिछाये
कितनो के मन विन्दु प्राप्य अवमर्श समाये ।।
सबकी अपनी—अपनी मजिल विविध प्रयोजन ।
सधने का विश्वास लिए बढ़ता पथ—जीवन ।।
कौन जानता ? अभी—अभी क्या घटने वाला ।
क्रूर विधाता बाम कहां क्या करने वाला ।।
सब यात्री थे पूर्ण मगन अपने—अपने मे ।
सहसा झटका तीव्र लगा जागे सपने में ।।
घटी क्षणो में मृत्यु और जीवन की क्रीड़ा ।
भरे रुदन, चीत्कार, कराह, चतुर्दिक पीड़ा ।।
बिखर गई कितनों की मजिल हाय ! वहीं तब ।
ममता, प्यार, दुलार, मिलन, आशा उजड़ी सब ।।
हुए शताधिक हत, असख्य आहत कुछ पल में ।
क्या से क्या हो गया तुषार पड़ा शतदल में ।।
शास्त्री जी ने सुना गये झट घटना स्थल पर ।
मर्म विदारक दृश्य देख उमड़ा उर—सागर ।।
किन्तु नयन भरती पीडा पी, समझ अवस्था ।
की हर संभव सहायता की शीघ्र व्यवस्था ।।

हा ! असावधानी से जीवन उजडे कितने ।
एक भूल ने तोड़ दिये हा ! सपने कितने ।।
मै मत्री हूँ, यह कलक भी आज मुझी पर ।
इस जान-हत्या का सारा दायित्व मुझी प र ।।
पद पर रहने का अब क्या अधिकार मुझे है ?
अब भी मंत्री बना रहूँ, धिक्कार मुझे है ।।'
उर अशान्त, मन भारी, बोझिल पग, घर लौटे ।
घनीभूत पीडा भीतर ही भीतर औटे ।।
इस विनाश ने मर्मस्थल पर तीव्र डसा था ।
अब तक अनसोये नयनो मे दृश्य बसा था ।।
त्याग पत्र दे दिया विविध अनुरोध न माने ।
पूर्ण किये सकल्प सदा ही जो-जो ठाने ।।
समझाती ललिता उनको नेहरू समझाते ।
पर शास्त्री जी इस घटना को भूल न पाते ।।
छाई अन्तस—जल मे यथा व्यथा की काई ।
त्याग पत्र देकर भी पूरी शान्ति न पाई ।।
नेहरू कहते-"तात ! विगत पर सोच वृथा है ।
वर्तमान को देखो जिसकी शेष कथा है ।।
लौट न सकता अब अतीत, आगे की सोचो ।
अपनी शक्ति न भावुकता के नख से नोचो ।।
गाधी के सपनो का भारत अभी पडा है ।
नवल सृजन का आगे कुछ आभास खड़ा है ।।
बारम्बार कहा करते हो देश बड़ा है ।
किसी भूल का क्यों पथ पर पाषाण अड़ा है ।।

भूले होती ही रहती है यहाँ जनो से ।
महापुरुष भी बच पाये है क्या भूलो से ?
स्वाभाविक है भूल जहाँ तक मानव—माया ।
भूलो ने ही तो मानव को मार्ग दिखाया ॥
भूल न होती हर मानव ईश्वर बन जाता ।
हर भटकन से जुड़ा हुआ बढने का नाता ॥
सीखा जिसने भूलो से, ऊपर उठ जाता ।
पिछडा वही, रहा भूलो पर जो पछताता ॥
किसी भूल की फिर आवृत्ति न होती जिससे ।
बनता वही महान 'भूल तो होती सबसे ॥'
बिना विपक्ष पक्ष का जीवन नित अलसाये ।
भूलों से बचने की चेष्टा सजग बनाये ॥
भूल आज की एक चुनौती कल बन जाये ।
नई शक्ति का स्रोत सहज ही तब खुल जाये ॥
नई शक्ति ले पुन: बढा जो आगे करते ।
इस जीवन में वही सफलताओ को वरते ॥
भूलो का विश्लेषण कर भूलो से बचते ।
वही नवल इतिहास धरा पर मंगल रचते ॥
फिर, यह भूल न तुमने शास्त्री, स्वय किया है ।
मात्र प्रकारान्तर से भागी मान लिया है ॥
आधीनों की भूलों में भागी अधिकारी ।
त्याग पत्र दे तुमने नैतिकता व्यवहारी ॥
यह आदर्श प्रकाश—स्तम्भ सा खडा रहेगा ।
आदर्शों मे नाम तुम्हारा बड़ा रहेगा ॥

जग की दृष्टि न तुममे कोई अवगुण पाती।
सारी जनता धन्य-धन्य कहकर गुण गाती॥
उसका यह विश्वास सुरक्षित रखना होगा।
पूरी उसकी आशाओ को करना होगा॥
समझ रहा मै तात! इस समय व्यथा तुम्हारी।
आज न, कल माननी पडेगी बात हमारी॥
आये आम चुनाव, अभी संगठन सँभालो।
बढो, सबल कंधो पर अपने भार उठालो॥"
इस प्रकार शास्त्री जी ने सगठन सँभाला।
निर्वाचन-तम मे दल को फिर मिला उजाला॥
क्षेत्र-क्षेत्र मे दौड़-दौड़ विश्वास जगाया।
हुई विजय, दल ने ससद मे बहुमत पाया॥
साग्रह नेहरू जी ने मंत्री पुनः बनाया।
कधो पर सचार—परिवहन भार उठाया॥
शिप—बिल्डिग यार्ड मे नवक्षमता उपजायी।
ड़ाक—तार—हडताली माँगे भी सुलझायी॥
नेहरू जी ने साधुवाद दे बहुत सराहा।
एक नए पद पर इनकी सेवाएँ चाहा॥
"गुजर रहा नाजुक घडियो से देश हमारा।
औद्योगिक—वाणिज्य स्वरो ने तुम्हे पुकारा॥
आज तुम्ही मे देखूँ क्षमता देश उबारो।
औद्योगिक—व्यापारिक नौका को पतवारो॥"
"आँके अधिक न पूज्य! अल्प मेरी क्षमता है।
एक व्यक्ति सहयोग बिना क्या कर सकता है?"

"पर तुम केवल व्यक्ति नहीं हो, एक शक्ति हो।
कार्य-धातु-भाषा की तुम अभिनव विभक्ति हो॥
चौराहे पर जब-जब राह भटक जाती है
बुद्धि जहाँ पर किंकर्तव्य अटक जाती है।
वहाँ वहाँ पटुता से पथ को तुम गति देते।
तुम विभ्रान्त बुद्धि को मंगल मय मति देते॥
एक नवल प्रेरणा सभी मे तुम भर देते
कार्य प्रणाली से निज सबको अपना लेते।
यह वाणिज्य विभाग आज है बना समस्या।
भारत का उद्योग चाहता आज तपस्या॥
इसीलिए आ तुम पर मेरी दृष्टि टिकी है।
तुमने ही मेरी हर आशा पूर्ण की है।"
"पूज्य ! न चिन्ता करे मुझे विश्वास कर्म पर।
निज उत्पादन-क्षमता नभ छू लेगी बढ़कर॥"
नये ध्येय की ओर हुए शास्त्री जी उन्मुख।
आया नया विभाग चुनौती बनकर सम्मुख॥
सर्वप्रथम अध्ययन किया प्रत्येक दिशा का।
डूब गये फिर ध्यान रहा कब दिवस निशा का ?
सुलझायी हर गुत्थी विषम समस्याओ की।
श्रम-साधम में शक्ति भरी नव निष्ठाओ की॥
लघु विशाल उद्योग समानान्तर संस्थापित।
सार्वजनिक सँग निजी क्षेत्र के संरक्षित हित॥
एक समन्वय, एक दिशा देना न सरल है।
किया, दिखाया, धन्य इन्हें सी नीति विरल है॥

आशातीत बढा उत्पादन, जगी दिशाएं ।
बढी आत्मनिर्भरता की स्वर्णिम आशाए ।।
तभी विदेशी मुद्रा-संकट के दिन आये ।
शास्त्री जी ने ही धागे उलझे सुलझाये ।।
अथक परिश्रम रात-दिनो का व्यापक दौरा ।
पडा अचानक उन्हे एक दिन दिल का दौरा ।।
साधारण सी उठी वेदना प्रथम हृदय मे ।
सह-सह उसे दबाते रहे काम की लय में ।।
बढी वेदना ललिता जी को तब बुलवाया ।
कहकर पूरी गति पर पंखा भी चलवाया ।।
दृष्टि गई ललिता जी ने मुख उतरा देखा ।
उभर रही थी वहां व्यथा की पीली रेखा ।।
स्वेद-स्वेद हो रही देह थी उनकी सारी ।
हाथ हृदय पर, अंग-अग थे शीतल भारी ।।
देख दशा घबडायी ललिता, मन-मन रोई ।
डाक्टर आये, दवा चली पर लाभ कोई ।।
पूजा-गृह मे ललिता जाकर रो—रो कहती ।
"हे भगवान ! बचा लो उनको, सुन लो बिनती ।।
मेरे प्रभु, उनको क्यो कष्ट अगाध दिया है ।
मुझे दण्ड दो यदि कोई अपराध किया है ।।
नहीं उन्होने यहा किसी को कभी सताया ।
जो-जो भी व्रत लिया आज तक सभी निभाया ।।
जन-मंगल में जन—रजन मे निज को भूले ।
आज उन्ही की छाती शूल नुकीले हूले ।।

यह है कैसा न्याय, प्रभो ! विश्वास करूं क्यों ?
तेरी मंगलमय सत्ता पर माथ धरू क्यो ?
जन का सुखद विधान प्रभो, क्या तुम्हे न रुचता
बने हुए पाषाण, हृदय मे दया न ममता
नही-नही हे प्रभु ! मुझ पर पागलपन छाया ।
यह पगली क्या समझ सकेगी तेरी माया ।।
तूने ही तो स्वामी ! सब कुछ दिया हुआ है
उन्हे कष्ट हा ! तुमसे क्या कुछ छिपा हुआ है
मेरी सुनो पुकार प्रभो, अब दूर करो दुख ।
इन रोते नयनो को दे दो फिर हसता मुख ।।
रोती—रोती प्रभु—चरणो मे सुधि बुधि भूली
शास्त्री जी ने कष्ट-मुक्त हो आंखे खोली
चमत्कार यह डाक्टर कोई समझ न पाया ।
केवल ललिता समझ सकी निज प्रभु की माया ।।
व्यथा गई पर साथ शक्ति भी सोयी सारी
पत्नी की बढ गई सहज ही जुम्मेदारी ।
ललिता जी दिन-रात अथक सेवा करती थी ।
आवश्यकता पूरी स्वयं किया करती थी ।।
जन-जन के जो रहे, इन दिनो बस ललिता के
भाव रहे पर जन—सुखाय उनकी कविता के ।
कहा एक दिन "सेवा, ललिते ! अतुल किया है ।"
"नही आपको प्रभु से केवल माँग लिया है ।।
होकर भाव-विभोर भजन दो—एक बनाये
धन्य ईश, जिसने ये रोते नयन हँसाये ।।"

"प्रिये सुनाओ ! भक्ति भावना-मय निज रचना ।"
"सुने सुधारें, नाथ ! न संभव त्रुटि से बचना ।।"
मधुर स्वरो मे ललिता ने गाया तन्मय हो ।।"

(१)

हरी बिन कौन हरे मोरी पीर ।
हरे मोरी पीर, जिया कौन धराये धीर ।। हरी बिन..... ...
रोग कष्ट सब दूर करो हरि, बिनती करत रघुबीर !
जो कुछ है सब देन तुम्हारी, रक्षा करो रघुबीर !
बीच भवर मे नइया हमारी, पार करो रघुबीर !
घर मे ढूंढू बन में ढूंढें कतहूं न मिले रघुबीर !
हृदय की पीर मै किससे कहूं हरी दे-दे रघुबीर !
भक्ति हमारी अधूरी न रह जाये, डर लगत रघुबीर !
ललिता को प्रभु आस तुम्हारी, सुन ले हे रघुबीर !
मुग्ध हुए शास्त्री जी बोले "प्रभु की जय हो ।।"

(२)

भोला-भोला रटते-रटते हो गइली बावरिया ।
भोला मोरे भुलक्कड निकले ना ले लै खबरिया ।
भोला भोला रटते-रटते.. ..... ।।
सिर के ऊपर गगा सोहै गल मुण्ड़न की माला हो ।
कर में डमरू ले के घूमे बैल की सवारिया ।
भोला-भोला रटते-रटते... .. ।।
साधु संत की रक्षा कीन्हा रंक से राजा कर दीन्ह ।
पतित जनों का उद्धार कीन्हा, दीनन की पुकार सुना ।
भक्तन पर सर्वस्व लुटाकर हो गइल भिखरिया ।
भोला-भोला रटते-रटते.. ...... ।

भूल को मेरे भुलाकर भोला मेरी बिगड़ी बना देना ।
ललिता करती विनय प्रभुजी आओ मेरी नागरिया ।
भोला-भोला रटते-रटते...... ॥

"दोनो भजन बहुत ही भाये मुझे तुम्हारे ।
तुमने उर के भाव भजन मे भव्य उतारे ।,
मुझसे तुमने त्रुटि-सुधार के लिए कहा है ।
सीधी सच्ची भाषा में उर स्रोत बहा है ॥
सरल, सहज, भावाभिव्यक्ति ही सच्ची कविता ।
मुखर स्वयं उद्‌गार तुम्हारे इसमे ललिता ॥
कविता क्या यह तो गंगा की पावन धारा ।
त्रुटि—पाषाणो पर बहती, हो निर्मल धारा ॥
प्रिये ! भजन मे त्रुटि-सुधार की बात आदर्शी ।
ये जैसे है वैसे अच्छे मर्मस्पर्शी ।।"
धीरे-धीरे पति का स्वास्थ्य निखरता आता ।
ललिता जी की सेवा का फल मिलता जाता ॥
एक मास मे ही शास्त्री जी स्वस्थ हो गये ।
चिन्तन के क्षण नवमगल के बीज बो गये ।।
ललिता कहती-"मुझे आप पर ईर्ष्या होती ।
अग-अंग द्युतिमान स्वास्थ्य का अनुपम मोती ।।"
"तब भी तुमसे प्रिये ! गात यह मेरा आधा ।"
"किन्तु स्थूल यह, कहाँ आप जैसा बल साधा ।।"
"प्रिये ! रुग्णता शक्ति-लाभ का प्रकृत बहाना ।
लगता, मुझको मिला शक्ति का नवल खजाना ।।

अर्जित मानव-शक्ति क्षीण जब हो जाती है।
असंयमित गति, विकृति आन्तरिक जब लाती है ॥
तब मानव को उसकी प्रकृति रुग्ण कर लेती।
बरबस ही विश्राम सीख के अवसर देती ॥
रुग्णावधि मे भीतर प्रकृति स्वच्छता करती।
अंग-अग मे नवल शक्ति नव संबल भरती ॥
अब मैं निज दायित्व भली विधि निभा सकूंगा।"
"और शक्ति के लिए पुनः बीमार पड़ूंगा॥"
ललिता की इस चरण-पूर्ति पर सुमन खिल गये।
हँसे अधर से दोनो के दो नयन मिल गये॥
सरस बनाती आपस की बाते जीवन को।
कार्य जगत मे कहां अन्यथा रंजन मन को॥
जैसे - जैसे नेहरू जी थकते जाते थे।
शास्त्री जी पर कार्य-भार बढते जाते थे॥
नेहरू जी की दृष्टि सदा कुछ खोजा करती।
घूम-घूम प्राय: शास्त्री जी पर आ टिकती॥
निधन हुआ जब 'पत' प्रवर का, इन्हे बुलाया।
भारत के गृह मन्त्री पद के लिए मनाया॥
बढा और दायित्व, समस्याओ का मेला।
धीरज, साहस के बल ही सब जाता झेला॥
शास्त्री जी मे कमी न थी कुछ आत्म शक्ति की।
उर मे गगा बहती रहती देश-भक्ति की॥
कैसी भी हो जटिल समस्या, निज कर लेते।
सूत्र ढूंढ़कर युक्ति योग से हल कर देते॥

आसामी, पंजाबी माँगे आन्दोलित थी ।
अल्पसंख्यको की भाषायें उद्वेलित थी ।।
शास्त्री जी ने सूक्ष्म दृष्टि से सूत्र सँभाला
जनमत में विभ्रान्त सही मत ढूंढ निकाला ।
हर भाषा के संरक्षण की आवश्यकता ।
वांछित तदपि परस्पर भाषायी पूरकता ।।
जनमत बहुमत नही, विवेकाधारित मत है ।
व्यापक जनहित-पोषक जनमत ही जनमत है ।।
यह जनमत की एक नई ही थी परिभाषा ।
समझ गये आन्दोलनकर्ता इनकी भाषा ।।
इनका निर्णय मान्य हुआ प्रत्येक वर्ग को ।
मिली अयाचित शिक्षा भी हर निजी स्वर्ग को ।।
केरल में फिर सत्ता का संकट सुलझाया ।
भारत के प्रति नैपाली सद्भाव जगाया ।।
प्रबल चीन के क्रूर आक्रमण के अवसर पर ।
अकस्मात् विश्वासघात के नाजुक क्षण पर ।।
व्याकुल देशवासियो को नित धैर्य बंधाया ।
सब मे शांति-व्यवस्था के प्रति प्रेम जगाया ।।
विघटनवादी गृह तत्वों के फन-सिर कुचले ।
भूल गये निज नाच विदेशी कर-कठपुतले ।।
युद्ध रुका, खुल गये चीन के छली मुखौटे ।
पंचशील पर कफन डालकर कपटी लौटे ।
कहा एक दिन शास्त्री जी ने नेहरू जी से ।
होते हुए संकुचित किंवा भारी जी से ।।

"शांति हमारी नीति बड़े आदर्शों वाली ।
नैतिकता का कलश, विश्व मगल की ताली ।।
किन्तु जहां स्वार्थान्ध आततायी बढ जाते ।
शस्त्र अपेक्षित उस जग मे रक्षा के नाते ।।
रक्षा एक पुनीत कृत्य, कब शांति विरोधी ?
रक्षा के ही लिए राज्य है शांति-प्रबोधी ।।
जो समर्थ है शान्ति उसी को शोभा देती ।
असमर्थो की शान्ति मात्र ऊसर की खेती ।।
शस्त्र न होगे, युद्ध न होगे, मात्र कल्पना ।
स्वार्थी जग का सत्य युद्ध है, शान्ति जल्पना ।
मानवता स्वार्थो की टक्कर मे पिस जाती ।
उर-परिवर्तन की न स्वार्थ को भाषा भाती ।।
मानवता के अपराधी को दण्ड श्रेय है ।
शस्त्र उठाना सदा न हिंसा, न ही हेय है ।।
हम जब शस्त्रसमन्वित होते, चीन न छाता ।
निज पावन कैलाश न पापी तब छू पाता ।।
पूज्य प्रवर! ये अब भी मा की बिखरी अलकें ।
आसू की सूखी रेखा मे उलझी पलके ।।
कुम्हलाया यह माँ का आनन देख न जाता ।
मां की पीड़ा सोच-सोच मन रो-रो जाता ।।
याद आ रही उत्तर की वह खूनी घाटी ।
याद आ रही वीर प्रसू भारत की माटी ।।
शान्ति भग हो गई हमारी दुष्ट दाहता ।
स्वाभिमान भारत का हमसे शस्त्र चाहता ।।

"शान्त, शान्त, प्रिय शास्त्री! इतने बनो न भावुक।
कम न व्यथा को बन्धु घात का चीनी चाबुक ।।
कह–कह दिल का दर्द न साथी पुनः उभारो।
भोजन, वस्त्र प्रथम वांछित या शस्त्र? विचारो।।
मैने चाहा रहे न कोई भूखा नगा।
और बहे इस जग मे पावन प्रेमिल गंगा ।।
अब भी बन्धु! न मेरा वह विश्वास हिला है।
अब भी अचकन का वह शांति–गुलाब खिला है।।
पर हाँ, देश–सुरक्षा अपनी प्रथम अपेक्षित।
यदि सीमाएं रक्षित, रक्षित जनता के हित ।।
अतः आधुनिक जैसे चाहो शस्त्र बनाओ।
अपने मे अपनी रक्षा की शक्ति जगाओ।।
पर भारत के शस्त्र किसी को नही सताये।
निज या निर्बल रक्षा हित ही हाथ उठाये।।
जन–जीवन के कष्ट साथ ही भूल न जाना।
मेरा क्या, इस जग में किसका कौन ठिकाना।।"
"पूज्य! नही अन्यथा विचारे इस अवसर पर।
मेरा भी विश्वास अंहिसा–शांति–नीति पर।।
वह दिन दूर नही जब सपने पूरे होगे।
अभी जवाहर के जग मे लाखो दिन होगे।।"
जगी विविध फिर शस्त्रोत्पादन की फैक्टरियाँ।
लगी महकने नये क्षेत्र मे नई क्यारियाँ।।
पाकिस्तान महक वह पाकर जल–भुन बैठा।
रचा एक षड्यन्त्र, यहा जो छल बन पैठा।।

पैगम्बर के केश पवित्र चुराये किसने ?
सारा ही काश्मीर व्यथित हो लगा सिसकने ।
चिन्तित मुस्लिम वर्ग देश का क्षुब्ध हो उठा ।
एक साम्प्रदायिक ज्वालामुख क्रुद्ध हो उठा ॥
जन जीवन जैसे प्रदेश का रुद्ध हो उठा ।
अल्प सख्यको का विश्वास विरुद्ध हो उठा ॥
व्यथा, वेदना नेहरू जी की कौन समझता ?
किसमे साहस क्रुद्ध सर्प के संग उलझता ?
शास्त्री जी ने कामराज-योजना चुनी थी ।
त्याग पत्र दे दल की सेवा श्रेष्ठ गुनी थी ॥
शासन मे कुछ नये रक्त का समाहार हो ।
दल की नैतिकता मे भी सात्विक उभार हो ॥
कुर्सी छोडी, ओत-प्रोत हो इसी भाव से ।
किया सगठन की सेवा नित उसी चाव से ॥
धन या पद का लोभ न किंचित् इनको व्यापा ।
श्रम, निष्ठा, गुण के बल हर ऊचाई नापा ॥
यदपि किया अभिषेक अकिचनता ने नित ही ।
तदपि रही सतोप-सम्पदा सदा अमित ही ॥
यो तो कितना ही जल रोज वहा जाता है ।
पर जो प्यास बुझाये सुधा कहा जाता है ॥
नदी नहर के सीचे धरती कहाँ अघाती ?
जब तक घिरी घटा का वह सस्पर्श न पाती ॥
त्याग और सेवा के नाम अनेक मिलेगे
किन्तु न शास्त्री की समता मे एक टिकेगे ।

शास्त्री जी की त्यागवृत्ति पर पुलकित जनता।
धन्य अकिंचनता की भावन भाव-प्रवणता ॥
नेहरू जी ने इन्हे बुला साग्रह समझाया।
"थामो मेरे हाथ, समय ने मुझे थकाया ॥
त्याग पत्र तुम सब के कारण दे न सका मैं।
जूझ चुका उतना जितना कुछ जूझ सका मै ॥
अब अस्वस्थ हू कौन व्यवस्था देखे सारी।
शासन को अनिवार्य अपेक्षा आज तुम्हारी ॥
निर्विभाग मंत्री बन मेरा काम संभालो।
सर्व प्रथम काश्मीर काण्ड ही हाथ उठा लो ॥"
कर न सके इकार हृदय की बह भाषा थी।
थकते तन-मन की वह हसती अभिलाषा थी ॥
शास्त्री जी 'श्रीनगर' गये, सब बूझा-समझा।
विषम परिस्थिति मे नेतृत्व यहाँ था उलझा ॥
मनोयोग से गूढ युक्ति के पर फैलाये।
केश मिले, फिर प्रामाणिक दीदार कराये ॥
आपस मे सद्भाव जग गये, हर्ष समाया।
पाकिस्तानी मुहरो पर कालापन छाया ॥
लौटे शास्त्री, नेहरू जी ने गले लगाया।
कहने पर 'शेख् अब्दुल्ला' को रिहा कराया ॥
हज जाने के लिए उन्हे अनुमति दिलवाई।
ओढा खतरा जान बूझ कर अपना भाई ॥
तभी वज्र बन चक्र काल का हम पर टूटा।
दैव दस्यु ने भारत-कोष 'जवाहर' लूटा ॥

भारत-भाग्य-गगन की मानो ज्योति खो गई।
शांति बिलखती, हर गुलाब की कली रो गई॥
लगा कि भारत का सहजात भविष्य खो गया।
दुनिया का हर बच्चा चाचा-रहित हो गया॥
शास्त्री जी की अकथनीय वेदना अश्रुमय।
शान्ति घाट मे इनकी निधि सर्वस्व हुई लय॥

वसुधा ढूढे चरण रज, अम्बर ढूंढे आब।
उपवन ढूढे शान्ति का चेतन अरुण गुलाब॥

नेहरू के बाद कौन ?
विश्व विश्व मौन मौन।
कल के ही गर्भ कौन॥
पूर्ति कहाँ सभव है ?
क्या यहा असम्भव है?
तो भी क्या संभव है?
जन-मानस भारत का डूबा
महाशोक के सागर मे।
तीव्र हो गई तब भी हलचल
राजनीति की गागर मे॥
क्षण निर्णायक थे महत्व के
दृष्टि लगाये जग सारा।
देखें, अब इस महा अस्त पर
कौन उदित होता तारा॥

## नवाँ सर्ग

तन्त्र-जगत मे राजनीति की
महिमा युग-युग से न्यारी ।
शासन की वह रीढ, इसी पर
निर्भर दिशा व गति सारी ।।

राजनीति के निर्धारण की
पद्धति से शासन नाना ।
विकसित होते रहते जग मे
श्रेष्ठ, जिसे युग ने माना ।।

यह निर्धारण एक व्यक्ति से
कुछ से या बहुतो से है ।
प्रश्न नही, सम्पर्क वस्तुत:
कितना विशद हितो से है ।।

राजनीति मे हित विशेष का
उठता सचमुच प्रश्न कहा ?
हर वह तन्त्र काम्य है युग को
सबके हित हो निहित जहाँ ।।

राजनीति जब हित-विशेष की
सम्पूरक बन जाती है ।
शासन की हर विधा वहाँ जन-
हित की चिता जलाती है ।।

राजनीति का ध्येय वास्तविक
जन रंजनमय जन-हित है ।
शासन होता धन्य वही जो
जन-कल्याण समर्पित है ।।

युग की नव आकाक्षाएँ जिस
राजनीति मे स्वर भरती ।
सम्प्रेरित शासन की गतियां
दिशा-दिशा मंगल करती ॥

सम्प्रति जन-जागरण काल मे
प्रजातन्त्र युग की प्रियता ।
जन-प्रतिनिधि शासन अन्तर्गत
दल-दल प्रतिबिम्बित जनता ॥

अब जनता की राजनीति है
राजनीति मे है जनता ।
शासन जनता, शासित जनता
जन-युग मे सब कुछ जनता ॥

ससदीय पद्धति मे शासन
नित उत्तरदायी होता ।
सर्वाधिक जन-प्रिय जन-नेता
ही प्रधानमंत्री होता ॥

केन्द्र बिन्दु यह पद शासन का
जन-भविष्य का निर्माता ।
शक्ति महत्ता का इस पद से
जुड़ा हुआ संतत् नाता ॥

नेहरू जैसी अप्रतिम प्रज्ञा
बढा गयी गरिमा जिसकी ।
उस पद का अधिकारी आगे
कौन बने, क्षमता किसकी ॥

बहुमत दल कांग्रेस, सदन मे
दल का नेता अधिकारी ।
थे अनेक अभिलाषी सम्मुख
चयन समस्या थी भारी ॥

कार्य-समिति दल की विचारती
कुछ ऐसा व्यक्तित्व मिले ।
जिसके निदेशन पर सबके
स्वप्नो का उद्यान खिले ॥

हो समाजवादी समाज के
प्रति निष्ठा अविचल जिसकी ।
दल के ध्येय, नीति पर प्रति पल
हो प्रतीत समतल जिसकी ॥

गांधीवादी सिद्धान्तो का
जो हो व्यवहारिक दृष्टा ।
दक्षिण-बाय-तटस्थ, मध्य पथ-
अनुयायी जन-हित-सृष्टा ॥

जन-जन के जो अधिक निकट हो
भारतीयता — अनुरागी ।
राम राज्य से विश्व शांति तक
आदर्शो मे सहभागी ॥

दल-विश्वास जहां सहमत हो
जहा मिले आ हर धारा ।
नित्य नये आयाम प्रगति के
चरण भरे जिसके द्वारा ॥

यश की व्यापक परम्परा हो
जिसको अनुदित अनुसरती ।
वह प्रधानमंत्री अपना हो
गगन धवल जिसकी धरती ॥

प्रस्तावित प्रतिभाए सम्मुख
असमजस में समिति पडी ।
निज-निज पक्ष-समर्थन मे रत
गुटबन्दी आ उभर पडी ॥

विग्रह–विघटन की विभीषिका
विद्यमान विस्तीर्ण खड़ी ।
सुलझ न पाती थी कुछ ऐसी
उलझ रही थी विषम लडी ॥

उलझी लड़ी, न सहज सुलझती
मिले न जब तक मूल कड़ी ।
निर्विरोध निर्वाचन हो सब
हुए एकमत, बात बड़ी ॥

'कौन नाम जिस पर पूरा दल
अपना सहमत हो सकता ।
कौन नाम जिस पर स्वराष्ट्र भी
सांस चैन की ले सकता ॥

दलाध्यक्ष 'श्री कामराज' से
कहा समिति ने "खोज करे ।
दल का अभिमत जान, यत्न कर
दल – नेता उपयुक्त वरे ॥

'श्री नडार' हर अभिलाषी से
मिले प्रथम, पर फल न मिला ।
एक नाम पर कहीं न कोई
सहमति-सूचक सुमन खिला ।।

किन्तु 'इन्दिरा जी' ने उनसे
यह रहस्य की बात कही ।
'इस पद पर श्री शास्त्री आये
'बाबू जी' की चाह रही ।।

पूज्य पिता की अप्रकट इच्छा
पुत्री ने अभिव्यक्त किया ।
संसदीय नेतृत्व चयन का
मंगल-मार्ग प्रशस्त किया ।'

तब दल के प्रतिनिधि वर्गों से
पृथक-पृथक की वार्ताएं ।
दल का अभिमत जाना जागी
सहमति की नव आशाएं ।।

'शास्त्री जी' का नाम अनन्तः
लगभग सबके मुख आया ।
पद का रहा न अभिलाषी जो
श्री नड़ार को भी भाया ।।

बैठक बुला समिति की सत्वर
दल का अभिमत बतला कर ।
लालबहादुर शास्त्री जी का
नाम सुझाया यह कह कर ।।

'सम्प्रति एकमेव शास्त्री जी
लगभग सबसे सम्मत है ।
कुछ अक्षर जो रहे न सहमत
वे भी नही असहमत है ॥

जनता और अन्य कुछ दल भी
इन पर सहमत लगते है ।
कार्य समिति की काम्य कसौटी
पर भी खरे उतरते है ॥

गांधी जी का स्वप्न एक वह
शायद अब पूरा होगा ।
'सर्वोपरि पद पर स्वराष्ट्र के
कभी अकिंचन जन होगा ॥

'मेरा काम करो' इनको ही
था निदेश नेहरू जी का ।
'बनवा लो अचकन पैजामे'
था संकेत विरासत का ॥

सच्चे, सरल निरीह शभु से
विष्णु सदृश चतुराई मे ।
जन-हित के अविराम विधाता
वृत्ति न आत्म परायी मे ॥

सकट में सकटमोचन से
लक्ष्मण जागरूकता मे ।
द्रोण चुनावी चक्रव्यूह मे
एकलव्य से निष्ठा मे ॥

शास्त्री जी है प्रिय सबके ही
सार्वजनिक मत के जेता।
सामूहिक नेतृत्व रूप मे
इन्हे बनायें निज नेता ।।

इसी प्रश्न पर मैने वार्त्ता
शास्त्री जी से भी की है।
अति सकोच सहित स्वीकृति भी
मुझे उन्होने दे दी है ।।

साधु, साधु, स्वागत, स्वागत के
शब्द समिति मे गूँज उठ।
दलाध्यक्ष के सफल चयन पर
एक्य-विधायक भाव गठे।'

'नन्दा जी' ने शास्त्री जी का
प्रस्तावित शुभ नाम किया।
'देसाई जी' ने प्रसन्न मन
अनुमोदन का काम किया ।।

हुए सुसम्मानित शास्त्री जी
दल के निर्विरोध नेता।
मिला राष्ट्र को आदर्शों मे
व्यवहारो का समचेता ।।

नव प्रधानमत्री की जय से
गूंज उठा निज नभ सारा।
शुभ कामना, बधाई-भरिता
उमड़ी दिल्ली को धारा ।।

'नेहरू के पश्चात् कौन' का
जग कुछ विस्मित उत्तर पा।
देश-देश मे शास्त्री जी का
चित्र चरित्र विचित्र छपा ॥

'ललिता जी' मुस्काती पढ-पढ
प्रभु के प्रति हो आभारी ॥
'महक उठी है आज अकल्पित
मेरे जग की फुलवारी ॥'

शास्त्री जी बोले-"यह ललिते!
तेरी पूजा का फल है।
देती रहियो सबल मुझको
मुझे तुम्हारा ही बल है ॥"

फिर मां से जा कहा चरण छू
"नन्हे को आशीष मिले।
माँ! जिससे मेरे जीवन-पथ
नित विवेक-आलोक खिले ॥

दायित्वो की पूर्ति कर सकू
बहकूँ नही कभी बश मे।
हित-सकट जब, रहूँ नित्य ही
व्यापकतर हित के वश मे ॥

राजनीति पावन, पर कलुषित
स्वार्थ संकुचित करता है।
दो वर, मा यह कभी न मानू
सकीर्णता विवशता है ॥

झुकू न अन्यायी के आगे
न्यायी का सम्मान करू ।
नैतिकता के, मानवता के
आदर्शो पर जियू, मरू ।।

"लाल जयी हो, सपने मेरे
व्यर्थ न तुमसे जायेगे ।
देवलोक से पिता तुम्हारे
आशीषे बरसायेगे ।।

दो स्वदेश को नित मगयमय
स्वच्छ स्वशासन—परम्परा ।
बढे आज दायित्व तुम्हारे
माँ अब तेरी वसुन्धरा ।।

पूरे करने है अब तुमको
गाँधी—नेहरू के सपने ।
जाओ, ससद की बैठक है
व्यवहारो से सब अपने ।।

प्रथम घोषणा—क्षण ससद मे
नेहरू जी की सुधि आई ।
डबडब लोचन, रुद्ध कण्ठ, कुछ
वाणी अधिक न कह पाई ।।

आत्म व्यथा सम्पूर्ण राष्ट्र की
नयनो मे साकार हुई ।
श्रद्धाजलि की परम्परा मे
नीराँजलि यह अमर हुई ।।

"महामान्य अध्यक्ष महोदय!
असमय पड़ा समय ऐसा।
क्रूर काल ने छीना हमसे
महा प्राण नेहरू जैसा ।।

यदपि नहीं वे किन्तु उन्ही के
है आदर्श, दिशा देगे।
हम सब, सबके सहयोगों से
बिगड़ी बात बना लेगे ।।

शेष अधूरा सपना उनका
हमें पूर्ण करना होगा।
निज हित मानवता के हित के
साथ सदा रखना होगा ।।

चेष्टा मेरी सतत् रहेगी
हो सम्मान सुझावों का।
बने प्रशासन समाहार सा
हर दल के विश्वासो का ।।

रहे विरोधी बन सहयोगी
नम्र निवेदन है मेरा।
करें समीक्षाए सृजनात्मक
तज कट्टरता का घेरा ।।

दल-स्वर नहीं, राष्ट्र-स्वर उभरे
आपस के उद्‌गारों मे।
सबका मैं सहयोग चाहता
देश-सृजन त्योहारो मे ।।

शास्त्री जी के दृष्टिकोण का
स्वागत किया सदस्यो ने ।
जगा लिया कुछ मुक्त चेतना
पारस्परिक रहस्यो ने ।।

पत्रकार-सम्मेलन मे फिर
व्यक्त विचार किये अपने ।
"सेवक मै अपनी जनता का
जन-हित ही मेरे सपने ।।

बन्धु! व्यक्ति बदला है केवल
बदला नही और कुछ भी ।
लक्ष्य लिए नेहरू जी ने जो
है समक्ष वे सब अब भी ।।

व्यक्ति-व्यक्ति की वैयक्तिकता
अलग जहाँ अन्तर जितना ।
कार्यान्विति मे हो सकता है
अन्तर मात्र वहा उतना ।।

दू स्वदेश को स्वच्छ प्रशासन
यह संकल्प प्रथम मेरा ।।
है समाजवादी समाज को
पूर्ण समर्पित मन मेरा ।।

भूख गरीबी के विरुद्ध हम
दृढ अभियान चलायेगे ।
जन-जन को वित्तीय न्यूनतम
साधन सुलभ करायेगे ।।

रहन-सहन का स्तर ऊचा कर
सुख – संयोग जुटायेंगे।
जगा वर्ग–सहयोग–भावना
मगल — दीप जलायेगे ।।

बेकारी, अज्ञान, रोग को
हम आशक्ति मिटायेंगे।
गांधी के सपनो का अपना
भारत यहां बसायेगे ।।

यद्यपि साधन स्वल्प हमारे
और मनोरथ है भारी।
किन्तु सक्रिय संकल्पों का पथ
रोक न पाती लाचारी ।।

भारत एक महान राष्ट्र है
शाश्वत सस्कृति परम्परा।
इसके आध्यात्मिक मूल्यो पर
गौरव करती वसुन्धरा ।।

धूम मचाती नव क्षितिजो मे
इधर – उधर वैज्ञानिकता।
काम्य आज सहयोग, समन्वय
हो मगलमय मानवता ।।

विश्व–मंच पर राष्ट्र-राष्ट्र की
सम्प्रभुता सम्मानित हो।
अभिलाषी हम राष्ट्र–राष्ट्र के
सम मैत्री संस्थापित हो ।।

भारत के सम्बन्ध मधुर हो
सबसे मैत्री चाहेगे ।।
गुट या सैनिक गठबन्धो से
तटस्थता निबाहेगे ।।

राष्ट्रसघ के प्रति सहयोगी
भाव—भरा भारत होगा ।
विश्व-शांति के स्वर मे अपना
सहज सम्मिलित स्वर होगा ।।

ऐसी विविध घोषणाए सुन
जनता भी आश्वस्त हुई ।
'भावी क्या ?' सन्देह—कालिमा
उभरी नही कि अस्त हुई ।।

कार्य-कुशलता बढती ज्यो ज्यो
दैनिक देश—प्रशासन मे ।
शास्त्री जी की अप्रतिम प्रतिमा
घरती जाती जन-मन मे ।।

सघन स्वावलम्बन के अकुर
उगे देश की माटी मे ।
अधिकारों के सुमन विहसते
कर्तव्यो की घाटी मे ।।

किन्तु तभी मद्रास प्रान्त मे
खाद्य समस्या गहरायी ।
घोर अवर्षण, धान—अरोपण
सूखी फसल, क्षुधा छायी ।।

'मानव सब कुछ सह सकता है
सही न जाय उदर ज्वाला।
कुछ दाने पाने को उसने
जाने क्या क्या कर डाला॥

आज वही संकट सामूहिक
खड़ा सामने मुंह बाये।
सुनकर व्यथित हुए शास्त्री जी
किन्तु न किंचित् घबडाये॥

चावल जो उपलब्ध हो सके
शीघ्र वहा पर भिजवाया।
'भूखा नही एक को भी हम
मरने देंगे' कहलाया॥

बने आत्म निर्भर अपना यह
देश, रहे उनके सपने।
उत्तर भारतवासी जनता
का आह्वान किया उनने॥

"एक दिवस सप्ताह अवधि मे
चावल खाना हम छोड़ें।
बूंद-बूंद से सागर भरकर
हम इस सकट को तोड़ें॥

राजकीय भोजो मे चावल
का प्रयोग हम नही करे।
हर प्रदेश मे हरित क्रान्ति का
हम अभिनव अभियान करे॥

खाली रहे न खेत एक भी
हर मौसम झूमे फसलें ।
खूब उगाये साग-सब्जियाँ
घर आँगन, गमले-गमले ।।

कृषि-प्रधान है देश हमारा
कैसी अपनी बिड़म्बना ।
खिला न पाये अपने को ही
कितना थोथा श्रम अपना ।।

'सत्यमेव जयते' की धरती
मे 'श्रममेव विजयते' हो ।
खुद खाये हम विश्व खिलाये
तो भी अन्न नही कम हो ।।

शास्त्री जी ने भी अपनी रुचि
त्यागी चावल खाने की ।
ललिता जी ने कीमत आकी
चावल के हर दाने की ।।

उस दिन से सकट बीते तक
घर मे चावल नही बना ।।
यदा-कदा बच्चो ने दलिया
खाकर बोध किया अपना ।।

निज नेता के इन सपनो को
पा सबके संकल्प जगे ।
शीघ्र हुई हल खाद्य समस्या
संकट के सत्रास भगे ।।

शास्त्री जी के घर में उस दिन
जैसे ही चावल आये ।
सात मास के बाद देखकर
सारे बच्चे हर्षाये ।।

सुमन-सुता छोटी 'वनिता' ने
देखा आते 'बाबू जी' ।
दौड़ बजा ताली बोली वह
चावल चावल 'बाबू जी' ।।

शास्त्री जी ने बड़े प्यार से
उसे गोद मे उठा लिया ।
नयन सजल हो आये उनके
बोले वह हंस-"वह तो दलिया।।"

शास्त्री जी जो कहते, उस पर
स्वयं आचरण करते थे ।
इसीलिए उनके आवाहन
पर जन-जन चल पडते थे ।।

इसी अवधि में भाषा विषयक
विषम चुनौती घिर आई ।
जब कि अ-हिन्दी-भाषी प्रान्तों
ने पैदा की कठिनाई ।।

अंग्रेजी भाषा—प्रयोग की
थोड़ी शेष रही बेला ।
किन्तु राष्ट्र भाषा हिन्दी का
रचा न पाये वे मेला ।।

हिन्दी भाषा—भाषी कहते
"संविधान विधि पालित हो।"
किन्तु अ-हिन्दी-भाषी कहते
"सविधान संशोधित हो।।"

दक्षिणवासी आन्दोलन की
उग्र बनी यह अभिलाषा।
'हिन्दी नही, अपितु अंग्रेजी
के सँग प्रादेशिक भाषा।।'

इस संवेदनशील प्रश्न पर
शास्त्री जी गम्भीर हुये।
सत्वर भाषा-नीति बनायी
निर्णय घोषित किये नये।।

'हिन्दी की बन रहे सहेली
निज प्रादेशिक भाषाए।
अंग्रेजी भी रहे, न जब तक
हम हिन्दी अपना पाये।।'

सबने स्वागत किया नीति का
विघटन का षडयन्त्र ढहा।
रहा राष्ट्र भाषा का गौरव
दक्षिण भी सन्तुष्ट रहा।।

उधर जहाँ भी अस्थिरता थी
वैदेशिक सम्बन्धो मे।
सद्भावना - भरी यात्राएँ
की व्यापक अनुबन्धो मे।।

अखिल विश्व ने अल्पावधि में
इस प्रतिभा को पहचाना ।
गांधी-नेहरू की एकाकृति
सृजन एक ताना—बाना ॥

सागर सा व्यक्तित्व छलकता
मंगल गागर सी काया ।
बचन बीज से युक्ति मत्र सी
लघुता की विराट् माया ॥

जहा जहाँ पहुँचे शास्त्री जी
वहाँ-वहां भारत भाया ।
भारत का सम्मान और भी
बढ़ा स्वरूप निखर आया ॥

घर या बाहर समय समय पर
उनके व्यक्त विचारो से ।
राजनीति की वीणा झंकृति
हुई सहज गुंजारा से ॥

(१)

स्वतत्रता मंगल मंजूषा ।
मानव के सुन्दर सामाजिक जीवन की कल्याणी ऊषा ।
युग-युग से हर मानव इसका आकांक्षी, आराधक, सेवी ।
यह विकास-मंदिर के पावन प्रथम कक्ष की लौकिक देवी ॥
हर करणीय कार्य करने की स्वतत्रता विधिवत् आजादी ।
मिले वायु सी किन्तु सभी को हो समतल, श्रेणी या वादी ।।
स्वतंत्रता सामाजिक हित है पारस्परिक निहित हित सबका ।
व्यक्ति स्वतत्र स्व-हित साधन मे जब तक बाधक बने न पर का ।।

स्वतंत्रता स्वाभाविक सरिता सी सतत् सुख–सिन्धु समाती
विधि-तटबन्धों से प्रतिबन्धित गति स्वछन्द न होने पाती।
मानवता की प्रथम अपेक्षा यह विकास की भू वरदानी
त्रास–सुरक्षा कवच, प्रेरणा सृजनात्मक सभ्यता कहानी।
स्वतंत्रता मानव की आशा, स्वतंत्रता जीवन की भाषा।
प्रजातंत्र–पद्धति–परिक्रमा पथ–प्रेरक पालक परिभाषा॥

(२)

समानता आदर्श एक है
अखिल विश्व में भ्रातृ–भाव अनुभूति नेक है॥
धर्म, जाति, भाषा, निवास यद्यपि अनेक है।
मानव–मानव तदपि मूलत. सभी एक है॥
सब समान फिर भेद—भाव मे क्या विवेक है?
कृत्रिम विषमता के कारण कष्टातिरेक है॥
कुछ विवस्त्र, भूखे, कुछ भोगे सुख विलास के।
हो समानता, विषम चिन्ह ये मिटे त्रास के॥
मिले सभी को सतत् सम अवसर विकास के,
रहे न रक्षित हित विशेष परमाधिकार के॥
समानता ही प्रजातंत्र की प्रथम टेक है।
समानता ही स्वतंत्रता—राज्याभिषेक है॥

(३)

विधि–रक्षित हित ही अधिकार।
प्रगति मुखी पथ के दिग्दर्शक ये आलोक दीप अविकार।
मानव के मंगलमय-दावे या औचित्यों के आधार।
सामाजिक स्वीकृति के बल पर बन जाते व्यापक अधिकार॥

ये व्यक्तित्व-विकास-कुंज के मानों प्रहरी बैठे द्वार ।
विविध आन्तरिक क्षमताओं के उद्घाटन के साधन-सार ।।
नैतिकता-सम्मत विवेकमय सुविधाओं के चिर भण्डार ।
आत्मोन्नति के अंक विहँसते लोक-हितैषी पूत विचार ।।
जो मेरा अधिकार जगत में हो वह सबका भी अधिकार ।
हर मानव को हर जग मे हो सुलभ मानवोचित अधिकार ।।
कर्तव्यो के जग मे जागे अधिकारों के शुभ संस्कार ।
अधिकारो के माध्यम से हो मानवता का युग-विस्तार ।।
कही अपरिचित रहे न मानव, यही बसे ऐसा संसार ।
हो साकार स्वप्न युग-युग का वांछित एक विश्व सरकार ।।

(४)

विधि, बन्धन न नियंत्रण है ।
आचरणो की एक व्यवस्था का मंगल आमन्त्रण है ।
जन-हित-विरत, स्वार्थ विधि-अनुमत शासन मात्र प्रतारण है ।
विधि तो वह जिसमे जन-सुविधा का समुचित भंडारण है ।।
स्वार्थमुखी स्वच्छन्द दिशा का सहज स्वतंत्र निवारण है ।
शांति-व्यवस्था का सामाजिक अर्थ समर्थ प्रसारण है ।।
संतत् व्यक्ति समाज मिलन का आचेष्टित आकर्षण है ।
सामाजिक आवश्यकताओ का स्वरूप निर्धारण है ।।
अधिकारों की परम्परा का संरक्षण, सर्वेक्षण है ।
कार्य-अकार्य-निकष प्रमाणिक, जनमत का अन्वेषण है ।।
नीति, धर्म, औचित्य, प्रथा-जल-भरे कलश का कंकण है ।
सार्वजनिक कल्याण-कुसुम-दल सुरभित जीवन-प्रांगण है ।।

(५)

पावन क्या कर्तव्य समान ।
पावन प्रेम, प्रार्थना पावन, पावन नीति, धर्म बलिदान,
पावन पर्व, प्रथा, प्रण पावन, पावन बाइबिल, वेद, कुरान
पावन न्याय, सहारा पावन, पावन आदर्शो का ध्यान
कण-कण पावन वसुन्धरा का, पावन अश्रुमयी मुस्कान
पावन सब, पर पावनतम है जीवन मे कर्तव्य-विधान
है कर्तव्य पुनीत प्रेरणा, हित का मंगलमय आह्वान
सत्यं, शिव, सुन्दरं-सगम मे जीवन का पुण्य-स्नान
दायित्वो का यह व्यवहारिक पक्ष सदा आचरण प्रधान
जितना ही जिसने अपनाया उतना ही वह बना महान
मगल की उर्वरा धरा यह यहाँ हृदय का नित उत्थान
जग मे स्वर्गावतरण का चिर अभिनन्दित मानव-अभियान।
विषम समस्याए संस्कृति-युग यात्रा मे भरती व्यवधान
सर्व समस्या-समाधान यह मानव-कष्टो का अवसान।
कर्तव्यो के घर ही होता अधिकारो का आदर मान
अधिकारों का सदुपयोग ही मानव का कर्तव्य महान।

(६)

समाजवादी समाज ऐसा ।
असाम्यवादी अगुस्तरी पर हिताक्षरी पुष्पराज जैसा ॥
चतुष्पथी पर खड़ी मनुजता अनेकवादी निशा पहेली।
खुली यही एक राजन्वीथी समाजवादी दिशा उजेली ॥
नही जहाँ पर समाज-प्रभुता, न ही कही व्यक्ति को अधेरा।
सव्यक्तिवादी समाजवादी समन्वयात्मक जहा सबेरा ॥

बना रहे व्यक्ति आत्म गौरव समष्टि साजे नियोजनाएँ।
जहा स्व का हो प्रसार इतना समग्र हित में स्व जा समाएं ।।
जनो-जनो के लिए जहां हो समाज सेवामयी व्यवस्था ।
कुछेक द्वारा न साधनो के समेटने की रहे अवस्था ।।
रहे विषमता न शेष कोई रहे न अ-वसन, अ-घर, अ-भोजी ।
पले न शोषण जहाँ किसी का मिले अपेक्षित सुयोग्य रोजी ।।
जहाँ सभी को सुलभ सुशिक्षा, बीमा-सुरक्षा, उचित चिकित्सा ।
रहन-सहन की दशा जनोचित,जहा सभी को विकास नित सा ।।
जहा गुणो से महा मनुजता, न कुल प्रमुख हो, न पद, न पैसा ।
जनो-जनो के बिना सुखो के जनो-जनो का स्वराज्य कैसा ।।

(७)

श्रेष्ठ नागरिक निधि स्वदेश की ।
इनके बल ही चरण बढाती जन-कल्याणी दिशा देश की ।।
प्रगति देश की नही कभी जनसख्या पर आधारित होती ।
श्रेष्ठ नागरिक ही वे सीपी उगते जहा प्रगति के मोती ।।
जितने होगे श्रेष्ठ नागरिक देश बडा उतना ही होगा ।
जितना दृढ आधार रहेगा उतना दृढ आधेय बनेगा ।।
हर वासी बन जाय नागरिक जन्म वश देशीयकरण से ।
किन्तु नागरिकता तो साथक होती गुण, आदर्श-वरण से ।।
काम्य वही नागरिक भावना, सकीर्णता न जिसमे व्यापे ।
स्वहित जहाँ जन-जन के हित मे निज गतव्य सदा ही नापे ।।
जिसमे सामाजिक रुचि, सेवा-तत्परता की नही इयत्ता ।
कर्तव्यों के अनुपालन मे व्यापकता की जहा महत्ता ।।
ज्ञान, विवेक, आत्म-संयम की सगम धारा जिसमे बहती ।
अधिकारो के सदुपयोग को जहा सक्रियता सवरी रहती ।।

जहां विश्व-बन्धुत्व भावना से मिलती बढ भक्ति देश की।
जिसमे सद्व्यवहार, कुशलता बलिहारी उस यशी वेश की॥

(८)

प्रशासन, शासन की अभिव्यक्ति।
राज्य की इच्छाओ की मूर्त रूप—दात्री वैधानिक शक्ति॥
प्रशासन विधि अभिशासी नीति करे कार्यान्वित राज्य प्रबन्ध।
व्यवस्था यह, इसके दो छोर, एक शासन, दो जन सम्बन्ध॥
प्रशासन पर आधारित शान्ति, प्रशासन पर ही प्रगति-विकास।
इसी की क्षमता पर कल्याण, इसी की क्षमता पर इतिहास॥
किन्तु है जहाँ प्रशासन सुस्त, सभी आशाए वहाँ नगण्य।
प्रशासन सदा चाहिए चुस्त, कुशल, कर्तव्यनिष्ठ, कर्मण्य॥
ध्येय हो एक लोक—कल्याण, भाव जन—सेवा का अभिराम।
जहां पर जो जिसके दायित्व, पूर्ति मे तत्परता अविराम॥
बधा हो अनुशासन की डोर, प्रशासन स्वच्छ, स्वस्थ, चैतन्य।
परिस्थिति सूक्ष्म-बोध, चातुर्य, भरा हो जागरूक सौजन्य॥
जहा जन-सुविधामय दायित्व, त्रास विधिलंघी को अनिबार्य।
रमा हो वर्ग—वर्ग सहयोग, शीघ्र संपादित होते कार्य॥
जहाँ ऊपर से त्याग—प्रवाह, भोग का नीचे से उत्थान।
समन्वय त्याग-भोग के मध्य, प्रशासन का आदर्श विधान॥
प्रशासन स्वयं बने आदर्श, रचे मगलमय जग आशक्ति।
जगाये जन-जन मे अनुरक्ति, व्यवस्था के प्रति निष्ठा-भक्ति॥

(९)

विधा नयी हड़ताल ।
अपनी मांगें मनवाने की युक्ति सशक्त विशाल ।
व्यक्ति—विकास हेतु रहती नित सुविधाओं की चाह ।
श्लथ-प्रयत्न, असफल हो मानव अपनाता यह राह ।।
अनुचित वितरण के, समाज मे विषम जहाँ आयाम ।
न्यायअकर्ण, वहाँ वंचित जन चुनते यह पथ वाम ।।
शासक का हो अत्याचारी, शोषक जहाँ स्वरूप ।
शोषित, त्रस्त, अशक्त वर्ग मिल अनुसरते यह रूप ।।
सक्रिय सहानुभूति संक्रामक बन जाती तत्काल ।
असहयोग की युग—विभीषिका चिन्तनीय हड़ताल ।।
यह विरोध की सामूहिक अभिव्यक्ति, क्षोभ की शक्ति ।
नारे, सभा, जुलूस संघमय प्रायः कार्य—विरक्ति ।।
किन्तु कभी भावुकता—प्रेरित इसका रूप कराल ।
उगला करती यह हिंसामय तोड-फोड विष—ज्वाल ।।
निन्दनीय तब, कार्य—व्यवस्था, धन, जन की हो हानि ।
स्वार्थं नहो, समुचित सुविधाये, सत्य अहिंसा, कानि ।।
कर हडताल मनुज पा जाता मनचाही जयमाल ।
किन्तु विवशताकारी कोई अंक न इसके भाल ।।

(१०)

गुटबन्दी मानव की भूल ।
मगल—मिलन—मार्ग में मानों बिखरे स्वार्थ संगठन शूल ।।
जितने मानव उतने मत हैं कुछ अनुकूल अपर प्रतिकूल ।
वचारिक संगठन—प्रतिक्रिया हर सगठन क्रिया के मूल ।।

श्रेयस्कर संगठन वही जो धारे व्यापक ध्येय-दुकूल ।
साधे हित जो किन्तु सकुचित, वह है गुट, मानव-हृत्शूल ।
गुट, आमलक वृक्ष के प्रत्यय पालित-पोषित पौध बबूल ।
या मोती की भस्म समझकर ली जाने वाली, गुट, धूल ।।
गुट के फेर पड़ी मानवता कभी न पा सकती सुख-कूल ।
सह-अस्तित्व विरोधी होता गुट, चिर संघर्षों का मूल ।।
मानवता की हत्या करता यह स्वार्थों को देता तूल ।
अन्धे स्वार्थ संगठित हो-हो व्यापक हित को जाते भूल ।।
आदर्शों की प्राप्ति के लिए गुटबन्दी न कभी अनुकूल ।
गुटबन्दी तो विष सी करती नष्ट व्यवस्था, शान्ति समूल ।।

(११)

प्रकृति-पूजन 'बन-महोत्सव ।
यह पुरातन वृक्षरोपण की प्रथा का संगठन नव ।।
देखकर भूगोलवेत्ता भू-क्षरण होते निरन्तर ।
'वृक्ष ज्यादा, भू क्षरण कम' सूत्र यह खोजा अनन्तर ।।
मुग्ध मानव जिस प्रकृति के रूप की रमणीयता पर ।
मंजु हरियाली-भरा हर वृक्ष उसकी ही धरोहर ।।
अमित बर्षा, काष्ठ उद्यम, वायु-शुद्धीकरण, इंधन ।
मार्ग-छाया, विविध औषधि, लाभ अगणित, एक साधन ।।
खग-सदन, परमार्थ-शिक्षण. 'सजग प्रहरी, विजय सहचर ।
वृक्ष-पूजन मे निहित है वृक्ष की महिमा अनश्वर ।।
बाह्य भौतिक लाभ-लोभी दृष्टि, कटते जा रहे वन ।
तीव्र गति से लुट रहा हैं प्राकृतिक सौदर्य—साधन ।।
दूर होता जा रहा है पक्षियों का मंजु कलरव ।
वृक्ष—रोपण युग अपेक्षा, अन्यथा मंगल असंभव ।।

(१२)

अपनी पावन परम्परा है ।

व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय-हृदय में युग-युगसे ही वसुन्धरा है ।।

सुजला, सुफला, मलय-शीतला, शस्य-श्यामला राष्ट्र-धरा है ।

सागर जिसके चरण पखारे, शीश हिमाचल मुकुट धरा है ।।

जिसमे धार्मिक सहिष्णुता है मानवता का भाव भरा है ।

सदाचरण, नैतिकता के प्रति जिसका चिर अनुराग हरा है ।।

देश-भक्ति की गोमुख गंगा संसृति-सागर स्वयम्बरा है ।

राजनीति में पंचशील का जहाँ हितैषी मुख उभरा है ।।

तुलसी, सूर, कबीर सरीखे कवि—स्वर मे जीवन निखरा है ।

ग्राम-ग्राम मे जहाँ माँगलिक कौटुम्बिक सौरभ बिखरा है ।।

आध्यात्मिक मूल्यो में शाश्वत जागृत संस्कृति ऋतम्भरा है ।

राम ,कृष्ण, गौतम, गांधी के आदर्शों से चिदम्बरा है ।।

(१३)

कृषि प्रधान यह देश हमारा ।

यह गांवो का देश मूलतः वसुन्धरा पर सबसे न्यारा ।।

गाँवों ने नित इसे दुलारा, गायों ने नित इसे सवारा ।

गांव-गांव है इसका मन्दिर, मठ, मस्जिद, गिरजा गुरुद्वारा ।।

भारतमाता ग्रामवासिनी, अन्नदायिनी जीवनधारा ।

कृषक-श्रमिक-श्रम-स्वेद-बिन्दुओ ने भारत का रूप निखारा ।।

जब पाश्चात्य नागरिक-संस्कृति ने स्वदेश में पग विस्तारा ।

भौतिकता की चकाचौंध मे हमने निज इतिहास बिसारा ।।

बही कभी थी जिस भारत में दूध और घी की सित धारा ।

बिडम्बना यह आज उसी ने जग के आगे हाथ पसारा ।

जनसंख्या का बढ़ता हुआ दबाव आज बनता अंगारा
लघु सर-काई उदर-पूर्ति हित हा ! हंसों ने है स्वीकारा ॥
धिक-धिक भारत की सन्तानो ! स्वाभिमान ने है ललकारा।
शस्य-श्यामला राष्ट्र धरा के गांव-गांव ने तुम्हें पुकारा ॥
खाद्य समस्या सुरसा जैसी, बजरंगी-बल-बुद्धि सहारा।
'अन्नोत्पादन अधिक, जन्मदर कम' का सूत्र मात्र अब चारा।
मंहगाई भीषण विभीषिका, प्रगति-पंथ पसरा अंधियारा।
बिना स्वावलम्बन के सूरज कभी नही भरता उजियारा ॥
जग के हर मानव को रोटी दें हम हर पशु को अब चारा।
हरित क्रान्ति कर उपज बढ़ा लें तब होगा इतिहास हमारा ॥

(१४)

शिक्षा एक प्रक्रिया पावन।
यह आत्मिक पूर्णता-प्रकाशी है चलती रहती आजीवन।
मानव की प्राकृत क्षमताओं का करती सतत् उद्घाटन।
यह नव-नव जिज्ञासाओं के समाधान का सम्यक् साधन ॥
लोक ज्ञान की रश्मि-राशि से आलोकित करती पथ जीवन।
सद्गुण जननी, मानवता की मनोवृत्ति का नयनोन्मीलन ॥
कार्य, विचार व व्यवहारों में यह करती मगल संशोधन।
सदा परिस्थिति से मानव को सिखलाती करना सयोजन ॥
मात्र औपचारिक शिक्षा ही किन्तु बनी जबसे आराधन।
एक प्रमाणपत्र-अर्जन ही अब रह गया मूल शिक्षा-धन ॥
शिक्षित बढ़े, घटी सेवाएं, बेकारी के घिरे अशुभ घन।
श्रम की खेती पर कुण्ठा की बूंदे बरसी आ ओले बन ॥
शिक्षा नही मात्र सेवाओं के मिलने भर का विज्ञापन।
यह तो तन, मन तथा आत्मबल के साधन का है योगासन।
कितना सृजन अधूरा अपना कभी काम की नही करे ! मन।

शास्त्री जी की चिन्तना, निज अनुभव का सार।
युग युग के आदर्श मे, आँक रहा व्यवहार ॥

सादा जीवन,
उच्च विचार।
भीम आत्मबल
लघु आकार ॥

आकार से ही शक्ति का अनुमान करना भूल।
दृढ आत्मबल ही हर विजयिनी शक्ति के नित मूल ॥
है साधनो मे शक्ति कितनी देखना यह आज।
अरि आ रहा है लूटने या निज लुटाने लाज ॥

## -: विजय :-

[दसवाँ सर्ग]

अरि कौन? जो सोने न दे निर्बांध सुख की नींद ।
देखकर पर–वृद्धि जिसको आ न पाये नींद ॥
अरि कौन? जिसके स्वार्थ मे संघर्ष व्यापी भाव ।
जिसकी विरोधी वृत्ति मे हिंसा–भरा ठहराव ॥
अरि कौन? जो करता रहे आघात पर आघात ।
जो पर–अमगल के लिए अपनी बिगाड़े बात ॥
अरि कौन? हो षडयंत्रकारी नित्य जिसकी बुद्धि ।
हो पराया क्लेश जिसकी हर्षमय उपलब्धि ॥
अरि कौन? जो छूरी छिपाये, मुख बसाये राम ।
जो ताकता रहता अहित के योग आठो याम ॥
अरि कौन? मानवता न जिसमे रह गई हो शेष ।
जिसके हृदय हो पल रहा विश्वासघाती द्वेष ॥
अरि कौन? जो स्वार्थान्ध हो, दे अन्य अरि का साथ ।
हो अक अवसरवादिता क मात्र जिसके माथ ॥
अरि कौन? जो चलता व्यवस्था शान्ति के प्रतिकूल ।
मझधार वह, अरि, दूर जिससे नित्य रहता कूल ॥
है द्वेष, ईर्ष्या, क्षोभ, हिंसा, स्वार्थ, चिर अपकार ।
वैमनस्य, विरोध अरि के छल, कपट व्यवहार ॥
कोई न होता जन्म से अरि या यहाँ पर मित्र ।
दुर्भावना, सद्भावना के ये क्रियात्मक चित्र ॥
पर स्वयं ही अरि बना जन्मात् पकिस्तान ।
करता रहा सद्भावना के यत्न हिन्दुस्तान ॥
अन्तर न किंचित् आ सका माने रहा वह वैर ।
कटुता बढी कश्मीर का जब प्रश्न आया तैर ॥

स्वाधीन होकर था बना कश्मीर राज्य स्वतंत्र ।
भाया न पाकिस्तान को, रचने लगा षड्यन्त्र ॥

मुस्लिम–बहुल आधार पर राष्ट्रीयता के व्याज ।
विस्तार–सीमा, स्वार्थ–साधन, एक पथ दो काज ॥

भेजे मुसाहिब गुप्त दल गृह–विप्लवी चल चाल ।
सहसा किया बढ आक्रमण कश्मीर का बन काल ॥

वह एक छोटा राज्य जब तक सभल पाता रच ।
कुछ दो–तिहाई पाक अधिकृत हो चला रण––मच ॥

सदरे-रियासत ने अचानक देख यह आपत्ति ।
की राज्य-रक्षा हेतु भारत से विनीत प्रशस्ति ॥

निज शरण–आगत की सुरक्षा धर्म अपना मान ।
आहूत भारत-सैन्य ने छेडा त्वरित अभियान ॥

पाये नही टिक पाक सैनिक उग्र दुहरी मार ।
भगन लगे निज प्राण लेकर सह न पाये वार ॥

पर पूर्व इसके आततायी छोड पाता क्षेत्र ।
हो मुक्त पाते युद्ध के उन्माद से अरि–नेत्र ॥

रण के विरोधी शांत नेहरू ने दिया रण रोक ।
अरि रह गया चिपका तिहाई अश पर ज्यो जोक ॥

सदरे रियासत ने विलगता-स्थिति असभव देख ।
हित सोच भारत से मिला दी भाग्य की निज रेख ॥

बन अंग भारत संघ का चमका, उठा कश्मीर ।
जल भुन गया अरि मन–परोसी खा न पाया खीर ॥

अनुबन्ध, वार्त्तालाप असफल विश्व-सघ-प्रयत्न ।
कर छल कि बल से वह हडपना चाहता यह रत्न ।।
सत्रस्त, व्याकुल पाक-अधिकृत विवश वह कश्मीर ।
था अंश अंशी से मिलन को व्यग्र और अधीर ।।
पर चाहता इस अश मे अंशी मिलाना पाक ।
निज लक्ष्य हित प्रत्येक साधन पाक माने पाक ।।
अति दूर रख दी 'राष्ट्रपति अय्यूब' ने जन नीति ।
पहचानता है एक सैनिक मात्र रण की रीति ।।
शास्त्रीकरण को प्राथमिकता, गौण जन-कल्याण ।
था शक्ति क उन्माद भटका पाक का निर्माण ।।
सचित विदेशी आयुधो से साज अपनी सैन्य ।
नव शस्त्र-साधन की बहुलता मे भुला निज दैन्य ।।
कश्मीर को कौमी प्रतिष्ठा का बनाकर बिन्दु ।
घुस-पैठ, छल-बल से चला वह राहु ग्रसने इन्दु ।।
इगलैण्ड, अमरीका सरीखे पीठ पर थे हस्त ।
चल चीन अपनी चाल से था कर रहा विश्वस्त ।।
नारा दिया हसकर लिया इस बार पाकिस्तान ।
लड़ छीन ले कश्मीर क्या, इस बार हिन्दुस्तान ।।
सत्वर किया बढ़ आक्रमण पहले मुहिम पर 'छम्ब' ।
फिर 'खेम कर्ण' 'कुसूर' मे खोला मुहिम अविलम्ब ।।
घुस-पैठ यह छुट-पुट न थी यह था खुला रण-घोष ।
था रोटियो के मूल्य सचित आयुधो का कोष ।।
इस आक्रमण की चोट से भारत हुआ विक्षुब्ध ।
धक्का लगा उस भावना को जो रही अविरुद्ध ।।

उठने लगी उत्ताल लहरे रोष की घर रोर ।
ललकार संसद में उठा आलोचना का शोर ।
है सो रही सरकार सीमा के अरक्षित छोर ।
क्या चीन-ताडित चुक गया निज बाहुओं का जोर ।।
जो देश की रक्षा न कर पाये, नही वह नीति ।
रे, क्षुद्रता में कब जगा करती बिना भय प्रीति ।।
उग्र चीन के छल—आक्रमण के चिन्ह अब भी शेष ।
मां भारती के भाल का बिखरा अभी वेष ।।
अब क्षुद्र पाकिस्तान का निःशंक यह रण—घोष ।
सब लुटा रहा अभिमान निज सरकार के ही दोष ।।
आक्रान्त सीमाए हमारी कर रही चीत्कार ।
असमर्थ रक्षा में, न शासन का उसे अधिकार ।।
है दांव पर गौरव, सुनाई दे रही अरि-थाप ।
सत्वर न दे समुचित दिशा, नेतृत्व वह अभिशाप ।।
शास्त्री -प्रशासन के लिये यह ही परीक्षा काल ।
असमर्थ शासन को क्षमा क्या कर सकेगा काल ।।
दृढ़ मांग शासन से हमारी शत्रु को दो सीख ।
वह फिर न साहस कर सके पाये न मांगे भीख ।।
प्रतिनिधि -सदन में गूंजते विक्षोभमय मतव्य ।
अध्यक्ष ने इंगित किया 'सरकार दे वक्तव्य' ।।
उत्तेजना, आक्रोशमय वातावरण के मध्य ।
गंभीर शास्त्री जी उठे, बोले कि हे अध्यक्ष !
निज धैर्य खोना बन्धु ! संकट में, न हित की माप ।
आवेशमय हर कृत्य का परिणाम है परिताप ।।

यद्यपि सुरक्षा के लिये चिन्तित सही सब आप
पर आपसे चिन्तित अधिक शासन, नहीं चुपचाप ॥
यह कौन कहता है कि सीमा के अरक्षित छोर।
निज बाहुओं का आजमाना है अभी तो जोर ॥
संग्राम के साधन हमारे कम नहीं हैं आज।
है दण्ड देस में सबल अरि को हमारे साज ॥
हम सोचते थे, युद्ध मे कूदे न अपना देश।
मिल-जुल करे हल हर समस्या शांति के परिवेश ॥
है शान्ति अपनी नीति जो हिंसा-विरोधी शक्ति
निज देश के निर्माण मे अपनी सदा अनुरक्ति ॥
हम चाहते हर देश अपना खुद करे कल्याण।
निज साधनो के बल करें निज देश का निर्माण ॥
लडना अगर, दुख दैन्य, रोगो से लडे, मिल साथ।
जग मे अभावों का न रह जाये कही फुट-पाथ ॥
सद्भावना, सहयोग का नूतन बने इतिहास।
फिर अन्तरिक्षो में उडे भर भूतलो में हास ॥
पर तत्व कुछ ऐसे पडे अज्ञानता के फेर।
जो स्वार्थमय संकीर्णता-वश सुन न पाते टेर ॥
यह पाक भी लगता लगाये है उन्ही में पाँत।
विध्वंस-प्रिय जिसके पराई रोटियों पर दाँत ॥
शायद चुका है चूस वह कश्मीर का वह भाग।
बरसा रहा है शेष पर अब पुनः वैसी आग ॥
जिसको न लज्जा बात की, माने न युद्ध विराम।
जिसने हमारी नीति को समझा तृणो का धाम ॥

अब आ गया है वह समय, उसको सिखाना पाठ ।
अब शीघ्र उसकी खोलनी है, पूर्ण भ्रम की गाठ ।।
थोपा गया जब युद्ध तो लड़ना पडेगा ठोक ।
अब तोड ही देनी पडेगी यह विषैली नोक ।।
पर है निवेदन एक 'भूले आपसी मत-भेद ।
हर नागरिक दे प्राण-पण से देश को श्रम-स्वेद' ।।
स्वर तालिया की गडगडाहट मे मनाते मोद ।
था झूलता उत्साह का शिशु शुभ्र आशा गोद ।।
सब सासदो ने एक स्वर से दे दिया विश्वास ।
नेता विरोधी पक्ष के रचते नया इतिहास ।।
"सहयोग के सम्पूर्ण आश्वासन हमारे आज ।
अब एक ही दल, एक नेता है हमारे आज ।।
सम्पूर्ण अपना देश इस सकट घडी मे साथ ।
है एक शास्त्री की दिशा मे पग करोडो हाथ ।।
निज देश का नेतृत्व अधुना दृढ करो के बीच ।
विश्वास अपना पूर्ण अब वह धुल सकेगी कीच ।।"
फिर पूज्य शास्त्री ने समर की हर परिस्थिति जान ।
हर वाहिनी-पति के सुझावों का किया सम्मान ।।
निर्देश दे समुचित, कहा 'वह सब करे जो ठीक ।
उपयुक्त सैनिक दृष्टि से चलना विजय की लीक ।।
यह देश देखेगा तुम्हारा रण-जयी अभियान ।
पर वैर जनता से नही नित ही रहे यह ध्यान ।।
चाहूं अनावश्यक न हो क्षण एक भी यह युद्ध ।
बस, पाक-शासन का मिटे भ्रम, वह चले पथ शुद्ध ।।

अरि सैन्य-बल से चाहता, माँ का करे अपमान।
तुम चूर कर देना हमारे वीर! वह अभिमान॥
प्रच्छन्न प्रेरक शक्तियो के भी झुकाने नेत्र।
कश्मीर है, आगे रहे अविभाज्य भारत—क्षेत्र॥
अरि आधुनिकतम आयुधों से है सजाये स्वार्थ।
अब पुण्य भारत भूमि की लज्जा तुम्हारे हाथ॥"
"चिन्तित न हो! हे युद्ध नायक! प्रेरणा प्रतिमान।
संसार देखे साधना के युक्ति—शर—सधान॥
विश्वास देते—देश का ऊचा रहेगा माथ।
लाहौर तक हमको बनाना है विजय का पाथ॥"
सत्वर बजे रण के नगाडे उग्र सीमा द्वार।
फिर हर मुहिम पर देश के सैनिक उठे ललकार॥
बढते हुए पग पाक सेना के रुके हर छोर।
अरि को मिली फिर 'कारगिल' पर मात खाती भोर॥
उड़ने लगा झडा तिरंगा शीश 'हाजी पीर।'
पटु भारतीयों के समर की बेमिसाल नजीर॥
अय्यूब ने निज सैनिको से जा कहा ललकार।
"तोबा तुम्हारी जिन्दगी, तोबा वतन से प्यार॥
छोडो न हिम्मत जीत के पूरे अभी आसार।
यदि अब नही तो फिर नही, चूको नही इस बार॥
आला तुम्हारे पास काफिर से सभी हथियार।
हो इस तरफ से तुम उधर से चीन भीं तैय्यार॥
तुमको कसम अपने वतन की दीन की सौ बार।
समझो न दिल्ली दूर है कश्मीर के उस पार॥

आये न आये फिर कभी मौका तुम्हारे द्वार ।
रे, अब नहीं तो फिर नहीं, चूको नहीं इस बार ॥"
जैसे पलीते की किरण बढती धमाके ओर ।
वैसे कसम की प्रेरणा पहुंची वतन के छोर ॥
फिर हर मुहिम पर बढ चला दृढ आक्रमण का जोर ।
आग्नेय 'पेण्टन टैंक' कतिपय बढ चले कर शोर ॥
ये लौह प्राणी दैत्य से तूफान के लघु दूत ।
रणक्षेत्र में ढाते कहर ये ध्वंस-वंशी पूत ॥
क्या पथ-कुपथ अपने लिए खुद ही बनाते राह ।
ये तो सबल दृढ दुर्ग रण मे क्रुद्ध बन-बाराह ॥
नभ पर उधर अति दूर धावो हेतु 'सेवर जेट ।
सैनिक-असैनिक-क्षेत्र पर बम-बल करे आखेट ॥
हो आधुनिक इन आयुधों से त्रस्त भारत-सैन्य ।
कतिपय मुहिम पर हो विवश पीछे हटी चैतन्य ॥
यह सूचना पा स्वयं शास्त्री जी उड़े तत्काल ।
निज सैनिको के बीच जा बोले बहादुर लाल ॥
"हे वीर भारत के सपूतो ! विजय के अवतार !
तुम हो विशाल स्वदेश के चैतन्य पहरेदार ॥
दी एक छोटे देश ने हमको चुनौती आज ।
है आज मां के दूध की रखनी तुम्ही को लाज ॥
माना कि सेवर जेट पैण्टन टैंक से हथियार ।
यद्यपि न अपने पास जिनकी दूर-घाती मार ॥
है किन्तु इनसे श्रेष्ठतम आयुध हमारे पास ।
जिनसे विजय होती सदा वे आतमबल, विश्वास ॥

पथ सत्य का, बल युक्ति का है न्याय अपने साथ ।
साधन भले कम, साधना के वज्र अपने हाथ ।।
प्रत्येक सैनिक देश का है एक पैण्टन टैन्क ।
विध्वस्त कर दे खोल निज बलिदान-साहस बैंक ।।
मैंने सुना आवाज-भेदी यान सेवर जेट ।
यह चाह, सेवर जेट वेधी अब सुनूँ निज 'नेट' ।।
कतिपय पराये आयुधों पर पाक को है नाज ।
उस पर स्वनिर्मित साधनों से हम गिरायें गाज ।।
निज देश की इस इन्च-इन्च हमें धरा से प्यार ।
रक्षार्थ इसकी खेल लें उत्सर्ग का त्यौहार ।।
बढ़ तोड़ दे वह हाथ जो इस पर उठा है आज ।
बढ़ फोड़ दे वह आंख जो इस पर उठी है आज ।।
इस जन्म-भू के ऋण उतरने का यही तो काल ।
है कर रही जनता प्रतीक्षा कर लिए जयमाल ।।
प्रिय सैनिको! 'जीवित रहें या हम मिटें तत्काल ।
ऊँचा रहे बस ध्वज तिरंगा, उच्च भारत भाल ।।
बढ़कर मुहिम पर गूंजता यह शक्ति-स्वर-संगीत ।
नव स्फूर्ति भरता प्राण में निश्चित बनाता जीत ।।
अब भारतीयों ने मचाई नभ अवनि वह मार ।
अरि को छठी के दूध की तब याद आई धार ।।
थे नित्य सेवर जेट पैण्टन टैन्क होते ध्वस्त ।
अरि सैन्य का होने लगा वह हौसला अब पस्त ।।
कीलर युगल के नेट करते जेट के परिहास ।
'अब्दुल हमीद' समान सैनिक रच गये इतिहास ।।

इन आधुनिकतम आयुधों की दुर्दशा यह देख ।
था रह गया जग स्तब्ध पश्चिम-मुख पुती मसि-रेख ।।
'पेकिंग' का वह अग्निमेरधम् भी गया बेकार ।
जब पूज्य शास्त्री ने कहा सकल्प निज ललकार ।।
"पेकिंग के आरोप यद्यपि मात्र मिथ्याचार ।
तो भी निपटने के लिए हम आज हैं तैय्यार ।।
चीनी—मुहिम पर भी प्रतीक्षा मे खडे निज वीर ।
है शेष लेन व देन सिलसिला, शेष उसकी पीर ।।
इस घोषणा ने चीन को भी कर दिया चुप, शान्त ।
वह जानता था भारतीयों का समर-वृत्तान्त ।।
पढ-सुन समर की नित्य खबरें भारतीय समाज ।
इस राष्ट्र-संकट पर सजाता एकता के साज ।।
देते रहे शास्त्री सभी को धैर्य, जोश, प्रबोध ।
प्रत्येक पग पालित हुए सरकार के अनुरोध ।।
हर शब्द उनका बन गया था मागलिक शुचि मत्र ।
सबका मनोबल उच्च रखने मे सफल था तत्र ।।
भावात्मिका नव एकता का जग उठा सद्भाव ।
दल, जाति, भाषा प्रान्त भूले भेद के टकराव ।।
जा साम्प्रदायिकता मिली राष्ट्रीयता के अक ।
बस, सामने था एक सबके देश निज अकलक ।।
कुछ देश-द्रोही तत्व भी अब पा चुके थे होश ।
विस्तीर्ण भारत-सिन्धु मे लहरा रहा था जोश ।।
विद्यालयों में वीरता के नाटकों की धूम ।
कवि-गोष्ठियों, सम्मेलनो मे वीर रस की झूम ।।

थे सब कृषक, मजदूर उत्पादन—समर मे लीन ।
हर नागरिक छोटा—बडा दायित्व मे तल्लीन ।।
लगता कि स्वर्ग इसी धरा पर है नही अन्यत्र ।
"जय जवान--, जय किसान'-गूंजता सर्वत्र ।।
था दलदली उस, 'कच्छ के रन' पर कठिन सग्राम ।
तो पार इच्छोगिल नहर' करना असभव काम ।।
'पिट बाक्स—व्यूह' अदृश्य अगणित प्राणलेवा मार ।
पग-पग छिपा था अग्रसर को ध्वसरूपी द्वार ।।
पर निज बहादुर सैनिको ने की न कुछ परवाह ।
हस-हंस मरण का वरण करते, पार करते राह ।।
यो जीतती भारत-चमू पहुंची निकट लाहौर ।
रुक, भागती उस पाक सेना को न मिलता ठौर ।।
'भुट्टो महाशय' हार सुन निज मल रहे थे हाथ ।
'अय्यूब' के सब स्वप्न बैठे हाथ पर धर माथ ।।
था युद्धबन्दी के लिए राजी प्रथम ही हिन्द ।
जा अब कही राजी हुआ हो पस्त पाक दरिन्द ।।
सम्पूर्ण भारत मे विजय का छा गया उल्लास ।
आया निखर निज, रण-परीक्षा मे, नवल इतिहास ।।
थे बन गये शास्त्री विजय के मूर्तिमान प्रतीक ।
उभरा महामानव अकिचन वेष मे निर्भीक ।।
सर्वत्र 'शास्त्री जी अमर हों' के हुए उद्घोश ।
हर नागरिक के मुख-कमल पर खिल उठा सन्तोष ।।
निज राष्ट्र का हर कील-कांटा हो गया सपुष्ट ।
अपने किये की पा गया पूरी सजा अरि दुष्ट ।।

सारे जगत का भ्रम मिटा, भारत न दुर्बल देश ।
है शांति की उसकी दुहाई माँगलिक परिवेश ।।
फिर पूज्य शास्त्री जी ने कहा स्वागत-सभा मे एक ।
"आओ, सभी मिल, आज हम जय का करें अभिषेक ।।
यह जय कि जिसने कर दिये ऊचे हमारे भाल ।
ससार के भ्रम दूर जिसने कर दिये तत्काल ।।
भारत नही वह देश जिसको सैन्य-बल दे दाब ।
अपनी सुरक्षा के लिए जिसका सशक्त गुलाब ।।
भटके हुए अरि का सही जिसने दिखायी राह ।
अब उपमहाद्वीपीय होगा तीव्र शांति-प्रवाह ।।
यह जय कि जिसने एकता के सूत्र बाँधा देश ।
ऊँचा किया जिसने मनोबल देश का सविशेष ।।
जय धन्य जिसने दी हमारी हर कमी को दृष्टि ।
लो हो रही जिस पर सुधा-सीकर-सुमन की वृष्टि ।।
नभ भी मनाता आज अपने ढग जय उल्लास ।
है धूप-छाया स्वर्ण-मसि से लिख रहा इतिहास ।"
पर, यह न समझे शान्ति स्थापित हो गई है आज ।
सजते नही है युद्ध के बल शान्ति व्यापी साज ।।
कोई समस्या युद्ध मे होती नही हल लेश ।
हैं युद्ध दे जाता नये अगणित अकल्पित क्लेश ।।
हो जय-पराजय से न परिवर्तन हृदय का, मित्र !
इस जय-पराजय की अपेक्षा मेल मंगल चित्र ।।
यह जीतना रण इसलिए हमने दिया था रोक ।
वह अरि चुका था छोड़ रण-उन्माद का निर्मोक ।।

हर युद्ध बन्दी, मोड पर है युद्ध का विश्राम ।
आभास होता शांति का, कल के अनिश्चित याम ।।
सद्भावना, व्यापक हितों की भूमि पलती शान्ति।
रण जन्य कोई शांति तो मरघट सरीखी भ्रान्ति।।
है शान्ति मानवता, जगत का सहज नित्य स्वभाव ।
यह पूर्ण भेदातीत जन-कल्याणकारी भाव ।।
पारस्परिक विश्वास का जब तक न हो उद्रेक ।
जय का अधूरा ही रहेगा, बन्धु ! हर अभिषेक ।।
इस देश भारत को रहेगी शांति की नित चाह ।
थोपा गया था युद्ध हम पर, उर अभी तक दाह ।।
बचते रहे विध्वंसकारी युद्ध से हम नित्य ।
अन्याय सहने मे न गाँधी-दृष्टि से औचित्य ।।
रण पाक ने माँगा, दिया इस देश ने रणदान ।
है उन शहीदों को नमन जो हो गये बलिदान ।।
यदि आक्रमण को झेलने के हम न करते यत्न ।
खो बैठते अपना सदा को स्वाभिमानी रत्न ।।
कायर हमे कहता जगत, होते पुन: परतंत्र ।
यह सूख जाता विश्व का नव माँगलिक जनतंत्र ।।
देते मुझे है आप जय का श्रेय, अनुचित बात ।
है वस्तुत: तो श्रेयभागी वीर सैनिक, तात !
रक्षा जिन्होने की, चढाया रक्त, अपने प्राण ।
उन सैनिको को धन्य, उनके धन्य युद्ध-प्रयाण ।।
है आप सबको भी उन्ही के साथ जय का श्रेय ।
श्रम, एकता, सहयोग सबके नित रहेंगे गेय ।।

जीते अभी, पर नित्य जय का शेष है सन्देश ।
उत्पादनो मे आज भी हारा हमारा देश ॥
अभिषेक जय का पूर्ण करने की अगर है चाह ।
तो देश को आगे किये बढते रहें श्रम-राह ॥
सीमा-जवानो ने निभाये सुष्ठु निज दायित्व ।
उत्पादनो के रण हमारे अब रहे दायित्व ॥
रहने न पाये अन्न-आदिक वस्तु जन्य अभाव ।
सकल्प ले अपने करो अपनी बढेगी नाव ॥
आगे, विदेशों की दया के हो न याचक लेश ।
हर क्षेत्र मे हो आत्म-निर्भर, बन्धु! अपना देश ॥
देखो, अलौकिक आरती करता अनन्त समीप ।
पश्चिम-छितिज के थाल पर आदित्य का रख दीप ॥
फिर व्योम-भेदी जय-स्वरो के बीच जोड़े हाथ ।
नव प्रेरणा, संकल्प से सबके दमकते माथ ॥
पश्चात् कार्यालय गये, पूरे किये हर काम ।
जब रात पहुंचे द्वार पर हंसता मिला निज धाम ॥
सज-धज खड़ी ललिता लिए कर आरती का थाल ।
थे 'हरि' 'सुनील' पिन्हा रहे हंस-हंस सुमन की माल ॥
फिर बढ 'अनिल' व 'अशोक' ने टीके लगाये भाल ।
स्वीकार अभिनन्दन करें' बोली 'सुमन' तत्काल ॥
लख मुस्कराये और बोले-"यह नई क्या बात?"
"यह आपके 'बम्मड़ महाशय' का हठी उत्पात ॥"
"अच्छा, सुनील स्वनाम धन्य सुपुत्र बम्मडदास ।
स्वीकार हमने कर लिया यह आपका उल्लास ॥

धोती व कुरता पर हमारे शेष कितना रोष?"
"श्रद्धेय बाबू जी! रहा मेरी समझ का दोष ॥
मैं अब समझ पाया कहाँ किस मूल मे उत्थान ।
कुछ वेश-भूषा से नही, गुण से मिले सम्मान ।"
सद्‌बुद्धि पर तुमको बधाई, साथ ही ले जान ।
यह माँ तुम्हारी है हमारी प्रेरणा गुंजान ॥
जब-जब सही पथ पर हुआ मेरा हृदय कमजोर ।
जब चिंत्य ऊहा पोह मे मिलता न निर्णय छोर ॥
तब-तब सही पथ के लिए मुझको किया चैतन्य ।
बल, प्रेरणा देती रही ये माँ तुम्हारी धन्य ॥
है आरती करणीय इनकी लो उठाओ थाल ।"
पहना दिया बढकर स्वयं ही निज गले की माल ॥
पति स्नेह से पुलकित सलज ललिता, सजल थी कोर ।
पूजित चरण पर शात छलके दृष्टि से दो भोर ॥
"आओ चलें भीतर कि करना है यही विश्राम ।
'माँडा रियासत' मे हमारा एक पल प्रोग्राम ॥"
हसता प्रकृति की गोद मे कस्बानुमा यह गाँव ।
रक्षित सभी के हित यहाँ 'मोती महल' की छाँव ॥
पर्वत बने प्रहरी स्वय ही हर दिशा के द्वार ।
लघु 'करमहा नद' बह रहा जिसके गले का हार ॥
शुभ 'माण्ड़वी देवी' विराजी दूर दक्षिण छोर ।
सबके अमंगल रोकती जिनकी कृपा की कोर ॥
कोई समय था राज्य माडा का विशिष्ट महत्व ।
धन-धान्य, वैभव-युक्त इसका ख्यात था वीरत्व ॥

सारी प्रजा खुशहाल थी, संतुष्ट सबके भाग्य ।
राजा-प्रजा को निद्य कर्मों से रहा वैराग्य ।।
यद्यपि नही अब राजसी वे दिन, नही वे ठाट ।
पर जन हितैषी आज भी जीवित वही कुल-बाट ।।
निज वंश के अवतंस अधुना 'विश्वनाथ प्रताप' ।
है श्लाघ्य जिनकी भावना सेवा, सुकार्य-कलाप ।।
कांग्रेस के कर्मिष्ठ नेता, क्षेत्र के उत्कर्ष ।
भूदान मे दे दी जिन्होंने पूर्ण भूमि सहर्ष ।।
वे ला रहे है पूज्य शास्त्री को यहाँ पर आज ।
है इसलिए माँडा सजा अपने निराले साज ।।
है आज माँडा की सजावट वस्तुत: दृष्टव्य ।
लौटा कि माँडा का विभव धर रूप कोई नव्य ।।
ओढ़े हरी चादर धरा, अम्बर जलद-पट श्याम ।
है झल रहा पंखा पवन, वातावरण अभिराम ।।
हर पथ तिरंगी झंडिया के बाँध बन्दनवार ।
जनतंत्र का माँडा मनाता आज नव त्योहार ।।
उत्साह की लहरें निमंत्रण दे गयी हर द्वार ।
जन सिन्धु उमड़ा फैलता मण्डप-तटों के पार ।।
सम्मान्य शास्त्री जी पधारे, हो रही जयकार ।
हैं संग ललिता, सादगी जिनका सहज श्रृंगार ।।
श्रद्धा-स्वरों मे भूप ने स्वागत किया सविवेक ।
अंगुष्ठ अपना चीर शास्त्री का किया अभिषेक ।।
अरुणाक वह अभिषेक का शोभित दमकते भाल ।
मानो कि मंगल दीप की है ज्वाल स्वर्णिम थाल ।।

इस क्षेत्र पिछड़े को अभावों से दिलाते त्राण ।
या भ्रू धनुष पर हैं चढा शर तीक्ष्ण मगल-प्राण ॥
फिर पूज्य शास्त्री ने प्रकट करते हुए आभार ।
आश्वासनों के संग दी नव प्रेरणा, सुविचार ॥
सद्प्रेरणा पा लोग लौटे, हो प्रसन्न कृतार्थ ।
निज राष्ट्र-नायक का रुचिर दर्शन बडा परमार्थ ॥
पश्चात् ललिता से किया रानी जु ने अनुरोध ।
"हे मातु! हमको हो रहा है आज नव सुख-बोध ॥
हमने सुना है पूज्य शास्त्री की बडी यह चाह ।
वे सह न पाते चूंकि दुखियों की अभाव-कराह ॥
सेवा-निकेतन एक हो स्थापित उन्हीं के अर्थ ।
कोई चुना है स्थान क्या हे मातु! एतद् अर्थ?"
"हां, स्वप्न उनका राजनीति प्रपन्च से हो दूर ।
लेखन करेंगे और सेवा दीन की भर-पूर ॥
सोचा कभी था, ठीक संभवतः गुलरियां गांव ।
"हे मातु! पर मांडा रहेगा क्या न अच्छा ठाव ॥
सुविधा रहेगी आपको, हम भी रहेंगे साथ ।
सेवा बनेगी जो, बंटायेगे उसी मे हाथ ॥
विस्तृत महल का हो सकेगा श्रेष्ठ कुछ उपयोग ।
तन, मन व धन से मां! समर्पित नित रहे हम लोग ॥
राजा हमारे चाहते, 'यह मान लें प्रस्ताव' ।
इस क्षेत्र का सौभाग्य होगा धन्य मांड़ा गाव ॥"
ललिता हुई कुछ देर को वात्सल्य से अनुभूत ।
'निज के अलावा भी मिलेगा एक निज सा पूत ॥

(उस ज्योतषी के वे बचन हो सत्य आये ध्यान)
सबसे अधिक देगा हमें जो सौख्य, सुविधा, मान।
?यह दीन-दुखियो के लिये है मूर्तिमान प्रयत्न ।
वह धन्य मां जिस कोख जन्मा यह प्रतापी रत्न ।।
बोली—"करूगी आज उनसे आपके प्रस्ताव ।
अच्छे लगे उनको बहुत इस भूमि के सद्भाव ।।
सेवा-निकेतन के लिये मांडा बहुत उपयुक्त ।
हम सव मिलेंगे फिर कभी सस्थापना संयुक्त ।।
शास्त्री गये ललिता सहित 'बर्मा' इसी के बाद ।
उठते रहे थे कुछ प्रवासी और क्षेत्र विवाद ।।
'नेविन' व 'शास्त्री' मध्य वार्ता के चले कुछ दौर ।
था मिल रहा तत्काल निर्णय का न कोई ठौर ।।
पर श्रीमती नेविन व ललिता घुल मिली तत्काल ।
बोली विहस ललिता-नरो मे मेल निश्चय सवाल ।।
हम नारियो से क्यो लेता सीख यह नर लोक ?"
शास्त्री हंसे, बोले-" इसी का तो हमे है शोक ।।
माना कि होती नारियो मे मित्रता तत्काल ।
यह सत्य, उसके टूटने मे भी न लगता काल ।।
यदि हो गया झगडा शुरू तो फिर न उसका अन्त।
है नारियो मे मेल अस्थिर पर बिगाड अनन्त ।।
पर हम नरो के बीच दोस्ती में भले हो देर ।
छोटी—बड़ी बातो न होती पर कभी वह ढ़ेर।।
सब हंस पड़े; आश्चर्य, आगे का सफल था दौर ।
लौटे पुनः दिल्ली, समस्या सामने थी और ।।

था संधि-वार्ता के लिये अब पाक भी तैयार।
मध्यस्थता में रूस के, थे शान्ति के आसार ।।
फिर रूस-यात्रा की बनी तैयारियाँ हर ओर ।
कुछ चैन की साँसे भरा हेमन्त सीमा-छोर ।।
सबसे विचार-बिमर्श कर शास्त्री चले आवास ।
जन-भावना का ध्यान रखने का दिया विश्वास ।।
माँ के चरण छू मिल सभी से चल दिये उस पार ।
'चाहा बहुत पर जा न ललिता पा सकी इस बार' ।
ले उड चला निज राष्ट्र नायक को तुरन्त विमान ।।
हर दृष्टि लौटी देखकर नभ शून्य सा मतिमान ।
पर देखती ही रह गयी ललिता अवश, अनिमेष ।
अन्तर भरा बरबस, नयन छलके, रहा तम शेष ।
गिरती हुई माँ को सँभाले हरि खड़े थे मौन ।
यह शान्ति-यात्रा मांगलिक हो कह रहा था कौन ।
माथा उठा कर देखते थे ऊर्ध्व सीमा छोर ।
झुक झाँकते थे दो नयन नीचे धरा की ओर ।।
थे जुड़ गये दो हाथ कहकर "अल विदा, हे देश ।
आशीष दो, तेरा अमर हो शान्ति का सन्देश ।।
छूटा बहुत पीछे हिमालय से जुड़ा संसार ।
थी सामने हिम-आलयी वसुधा बुलाती द्वार ।।
है राजधानी रूस' की यह ताशकन्द' ललाम ।
संसार की नव साम्यवादी प्रेरणा का धाम ।।
मेहनतकशों की यह धरा, मेहनतकशो का देश ।
आवास, भोजन, वस्त्र की चिन्ता न जन को लेश ।।

बस, काम ही इतिहास जिसका काम ही अभिषेक ।
है सर्व हारा वर्ग का शासन जहाँ दल एक ॥
सुविशाल भारतवर्ष से जिसका असीम लगाव ।
जग जानता पारस्परिक जिनके गहन सद्भाव ॥
है पाक के भी इस धरा से स्वार्थमय सम्बन्ध ।
दोनो पधारे शान्ति का रचने नवीन निबन्ध ॥
सम्मान्य 'कोसीजन महोदय' ने मिला या हाथ ।
'इतिहास का यह स्वर्ण अवसर 'कह उठाया माथ ।
'अय्यूब शास्त्री हो अमर' के स्वर भरा आकाश ।
शुभ कामना ने कस दिये सद्भावना के पाश ॥
वार्ता हुई आरम्भ फिर प्रतिनिधि दलों के बीच ।
प्रत्येक अपने पक्ष मे हित को रहा था खीच ॥
उभरे परिस्थिति जन्य वार्ता के अनेक प्रसंग ।
सद्भावना के मध्य वार्ता के बदलते रंग ।।
था कूटनीतिक दाँव—पेचों का अहिंसक युद्ध ।
वार्ता कभी चलती सतत्, होती कभी अवरुद्ध ॥
सहमति-असहमति के तुला—पट पर विषम जब हाट ।
मध्यस्थ रूस सयत्न रखता भावना के बाट ।
प्रायः प्रसंगों पर सभी सहमति हुई कालात् ।
निज पूर्व सीमा पर उठी फिर लौटने की बात ॥
इस प्रश्न पर अभिव्यक्त भारत ने किया निज नीति
'हम चाहते हैं शान्ति, नित सबसे परस्पर प्रीति ।
'है पाक आक्रान्ता रहा' यह मान ले सुविचार ।
अब आक्रमण का त्याग दे आगे सदा कुविचार ॥

रण–हानि देने के लिये मन से करे स्वीकार।
कश्मीर के उस भाग से भी छोड़ दे अधिकार।
है अन्यथा सेना—परावर्तन न तथ्य—विचार।
भारत नही है लौटने को इन्च भी तैयार॥
पग–पग हमारे वीर सैनिक हो गये बलिदान।
उस रक्त—सिंचित भूमि पर हमको बड़ा अभिमान॥
किंचित किसी के क्षेत्र की हमको नही दरकार।
बस बन्द करना चाहते हम आक्रमण के द्वार॥
पर पाक को भाया नही यह सामयिक प्रस्ताव।
अटकी भंवर मे बात जैसे कूल पाती नाव।
वह चाहता सेना–परावर्तन बिना प्रतिबन्ध।
चिन्ता न की उसने तनिक हो या न हो अनुबन्ध॥
कुछ और झुकने के लिये भारत हुआ तैयार।
पर पाक की हटवादिता मे मात्र था इकार '।
इतना कडा रुख, वह, लगा खाये हुये सौगन्ध।
आखे नही होती सदा स्वार्थ होता अन्ध॥
होगी वार्ता सफल क्या? सोच रूसी व्यग्र।
करने लगे भारत मनाने के प्रयत्न समग्र॥
अय्यूब से शास्त्री मिले, कुछ रुख मिला इस बार।
निष्फल नही जाता कभी सच्चा सरल व्यवहार॥
फिर अन्ततः सब सोच शास्त्री हुये तैय्यार।
निज राष्ट्र से भी उच्च माना शान्ति का सुविचार॥
'हो पाक को जिस रूप मे भी बोध य परितोष।
होगा उसी मे आज हमको पूर्णतः सन्तोष॥

यदि पाक को अब भी न आयेगा तनिक भी चेत ।
होगा हमारे सैनिकों से दूर कितना खेत ?
पर शान्ति के हर यज्ञ मे आगे बढेंगे हाथ ।
भारत नही पीछे रहेगा एक हो या साथ ॥'
पूरी हुई यों सन्धिवार्त्ता, छा गया उल्लास ।
सप्ताह ने कुछ पृष्ठ जोडे शान्ति के इतिहास ॥

फिर शास्त्री अय्यूब ने, मुदित मिलाये हाथ ।
एक नया युग शान्ति का, उभरा इसके साथ ॥

"खुदा हाफिज"
:"खुदा हाफिज"
"हुआ अच्छा"
"करे अच्छा"

यह ताशकंद समझौता
वार्त्ता से हल—विज्ञापी ।
रण—भंजक मंगल रेखा
प्रतिवेशी देश—मिलापी ॥

शास्त्री जी सोने पहुँचे
जब हुए नितान्त अकेले ।
निज देश हृदय का उभरा
तमसावृत हुए उजेले ॥

## -: शान्ति :- (ग्यारहवाँ सर्ग)

संसार एक सागर है
चेतना सलिल लहराता ।
कामना - तरगे उठती
कोलाहल से चिर नाता ॥

हर कोलाहल के तल मे
अर्न्तहित शान्ति सदा ही ।
तट को साथी हर राही
मजिल को केवल माही ॥

चलता तो सारा जग है
चलने की नही मनाही ।
चलने चलने मे अन्तर
आगे कुछ, पीछे राही ॥

जाना पथ भी अनजाना ।
गति मे भी अगति समायी ।
राहो मे भी चौराहे
तम ने भी ज्योति जलायी ॥

जल सागर, जल ही बादल
जल बूद, लहर, हर धारा ।
चेतना एक पर विविधा
जैसे जल या फिर पारा ॥

खारा जल ज्यो नभ छूकर
जग का जीवन बन जाता ।
निज से त्यो ऊपर उठकर
चेतन पूजन बन छाता ॥

जिसका हर अग मे जग में
अपनापन फैला रहता।
उसका जीवन मंजिल तक
गंगा—जल जैसा बहता ॥

कामना तरंगित जल मे
है जहा भावना मोती।
मानवता वहाँ उजागर
मंगलमय हार पिरोती ॥

है हृदय भावना—मंदिर
पावनता से चिर नाता।
मंगलमय इसकी कृतियाँ
इतिहास सदा ही गाता ॥

भावना हृदग की कविता
भावना कर्म की निष्ठा।
भावनाहीन प्राणी की
जग मे हो नहीं प्रतिष्ठा ॥

सम्बन्ध भावनाधारित
भावना अकिंचन--सेवी।
भगवान भावना—भावित
भावना भक्ति की देवी ॥

बलिदान भावना प्रेरित
भावना ज्योति कल्याणी।
भावना भरी मानवता
भावना सुधा युग—वाणी ॥

कष्टो मे पाठ हसी के
भावना पढाया करती ।
शव पर श्रद्धा की माला
भावना चढाया करती ॥

बल बडा भावना मे है
हर क्रिया इसे अनुसरती ।
पर पाकर दिशा अग्राही
भावना अहित भी करती ॥

जिसके भावना-जगत का
हो जाता परिष्करण है ।
उसको अवदात अमरता
कर लेती सहज वरण है ॥

था ताशकंद जब सोता
उल्लास भरे सपनो मे ।
भावना देश की जगती
शास्त्री जी के नयनो मे ॥

'उस दिवस देश को मैंने
आश्वासन सुदृढ दिया था ।
मेरे वचनो पर सबने
अविचल विश्वास किया था ।

'वह भूमि न वापस होगी
रण मे जो जीती हमने ।'
है याद जवानो के भी
उस बहे लहू के सपने ॥

पर हुआ आज यह कैसे
सच को झूठलाया मैंने ?
उनका विश्वास समर्पित
वह कहाँ निभाया मैने ?

उस दिवस देश था मेरा
पर आज विश्व ने टेरा।
बढता ही गया बसेरा
टूटा वह मन का घेरा ॥

अब देश पुनः यह उभरा
छाती मे यह क्या कसका ?
बचनों से शायद फिरना
है नही हमारे वश का ॥

थी राह न कोई दिखती
क्या शान्ति अधूरी रहती।
यह व्यथा व्यर्थ क्यों बढ़ती ?
साँसो में दूरी दहती ॥

क्यो बढे दर्द यह खांसी ?
क्या कुछ हो गया गलत है ?
सच बोल, अरे ! मत मेरे
तेरा इस पर क्या मत है ॥

भावना देश की जग पर
क्यों बार बार छा जाता।
व्रीड़ा की बात नही पर
पीड़ा गहराती जाती ॥

भारत मानवता-पूजक
वसुधा परिवार हमारा
नित शान्ति, विश्व के हित में
भारत ने निज को वारा ।।

यह दर्द उठा फिर भारी
ललिता भी नही हमारी ।
तन स्वेद—स्वेद मुख सूखे
जल की यह कैसी झारी ?

प्रिय देश ! क्षमा कर देना
है शान्ति सदा कल्याणी ।
तन दूर भले, मन तुममे
रमता, रुकती क्यो वाणी ?

छाती पर चले हथौडे
घन घिरते चौडे-चौडे
हा राम ! कहाँ हो ललिते ?
अब कौन यहाँ जो दौड़े ?

छाती को हाथ दबाये
शास्त्री जी बाहर आये ।
हा ! दर्द ! दर्द ! चिल्लाये
सुन 'डाक्टर चुग' घबड़ाये ।।

पल का क्या यहाँ भरोसा
वे सज्ञा शून्य गिरे थे ।
क्षण भर इतिहास थमा था
उपचार असंख्य घिरे थे ।।

पर व्यर्थ हो गये साधन
पंक्षी उड चला अकेला ।
बस, शेष रह गया केवल
माटी, आँसू का मेला ॥

डाकिनी 'जनवरी ग्यारह'
ले गई लूट निधि न्यारी ।
छाछठ छूँछा पछताता
टूटी आशाए सारी ॥

आलोक ज्यों गया कोई
विश्वास सो गया कोई ।
इतिहास रो गया कोई
आकाश खो गया कोई ॥

उल्लासों के पर टूटे
युग—शान्ति — सहारे छूटे ।
सौभाग्य विश्व के फूटे
इस ज्योति—किरण के लूटे ॥

छिन गया महा सम्बल था
रह गया न कोई बल था ।
युग के समान हर पल था
हर नयन—नयन बादल था ॥

जो सुनता दौड़ा पड़ता
विश्वास न कोई करता ।
उर रक्त शूल सा गड़ता
रह—रह कर आहे भरता ॥

'वे आये सूरज लेकर
वे गये साथ सूरज भी।'
है शान्ति ढूंढती फिरती
ढूंढे अनुबन्ध—जलज भी ।।

मधुमास अभी आया था
इतिहास अभी भाया था।
इस ताशकन्द ने यश का
गुरु गर्व अभी पाया था ।।

कैसे यह अ–घट घटा है?
इसका रहस्य फिर क्या है?
हृद् रोग कभी पहले था?
या यह आघात नया है?

जितने मुख उतनी बातें
थी जाग गयी जग रातें।
नभ चढा एक ही जीवन
बरसों बरसे बरसाते ।।

प्रात. अस्तगत सूरज
दर्शन के लिए पड़ा था।
सारा ही रूस वहाँ पर
चित्रित, जड, मौन खड़ा था ।।

चिर शान्ति मिले आत्मा को
मन, प्रभु से यही मनाते।
नयनों में भर कर मोती
निज श्रद्धा–सुमन चढाते ।।

जब अरथी चल दी 'दिल्ली'
मातम का तम गहराया।
छा गयी अपरमित बोझिल
सर्वत्र शोक की छाया।

'अय्यूब' और 'कोसीजन'
मैय्यत को कन्धा देते।
उस शान्ति दूत को झुकते
माथे प्रणाम कर लेते।

चेतना मिली जब चेतन
अवशेष आवरण काया।
अपनी माटी से मिलने
जाती माटी की माया॥

उस रात रही व्रत ललिता
'सकष्ट गणेश चतुर्थी।
पर दूर उधर हा! पति की
तैय्यार हो रही अरथी॥

आपत्ति रही अनजानी
तो भी बेचैनी छाती।
क्यो याद न जाने पति की
थी बार—बार घिर आती॥

नयनो मे नीद नही थी
जा दृष्टि शून्य पर टिकती।
पति-मुख-छबि वहां उभरती
फिर सहसा जैसे मिटती॥

हरि ने आ तभी बताया
था स्वर बोझिल घबडाया ।
"बाबूजी रुग्ण बहुत है
मा ! फोन 'रूस' से आया ।।,,

"है रुग्ण बहुत क्या कहते ?
कैसे क्या हुआ बताओ ?"
"माँ, फोन पुनः आयेगा
मा ! इतना मत घबडाओ"

"हरि स्वय फोन कर पूछो
जा पूरा पता लगाओ ।
भर रही हृदय अशंका
हा ईश्वर ! हा ! हरि जाओ ।।

था धडक रहा अन्तस्तल
पूजा —घर दौडी ललिता ।
पय मे पिण्डी नहुलाकर
झुक रही नयन-जल भरिता ।।

तब तक हरि ने हा ! आकर
रो-रोकर निधन सुनाया ।
हा ! गिरा बज्र यह सुनकर
किंचित विश्वास न आया ।

'यह नही कभी हो सकता
यह कभी नही हो सकता ।
यह नही नही हो सकता
कहता हर प्राण बिलखता ।।

पर सच था हा ! यह सच था
माना कि अकल्पित सच था ।
उस क्रूर काल ने छीना
प्रियतम अहिवात—कवच था ।।

सुनते ही संज्ञा खोयी
ललिता न घात सह पायी
सुनने को शेष रहा क्या
जो शेष, न रो भी पायी ।।

विक्षिप्त हुईं सुन माता
रोती हंसती जो आता
'कैसा यह क्रूर विधाता ।
वृद्धा बैठी सुत जाता ।।

सह–सहकर कष्ट हजारों
जिसने उसको पाला था ।
कामनानुसार पिता की
जिसने ढाला संयत्न था ।।

हो रहे सिद्ध थे जिससे
आदर्श, मनोरथ जिसके ।
उस पुत्र—निधन पर सीमा
क्या होगी दुख की उसके ?

उड गयी नींद घर भर की
पल रग-रग शूल चुभोते ।
सुमन, सुनील, अशोक, अनिल
एवं परिचारक रोते ।

क्षण मे घर के कण-कण मे
आ पैठी दुख की छाया ।
था सारा घर शोकाकुल
सारे घर रुदन समाया ।।

सबके नयनो से बहती
अविरल आँसू की धारा ।
गिर पड़ा पहाड सिरो पर
हर आँसू था बेचारा ।।

कितनी विलपी दुख ध्वनियाँ
उस युग कितने स्वर रोये ।
कितने व्याकुल नयनो ने
खारे जल से मुख धोये ।।

हिल जाती ठक दीवारे
सुन-सुन कर करुण हिचकियाँ ।
दुहराता वायु रुदन की
थक बढती हुइ सिसकिया ।।

दयनीय गुहारे घर की
सारा परिवेश गुंजाती ।
'दस जनपथ' की कोठी पर
भीडे थी बढती जाती ।।

दुख की वह रात न बीती
रवि कहाँ ? न दिया दिखाई ।
नभ-थल तक तम-पट बुनती
थी धुंध चतुर्दिक छायी ।।

देखी न गयी दुख-यामा
नभ ने निज मूंदी आखें ।
धरती भर आंसू रोयी
उन्मन खग, सियरी पाँखे ।।

अचिरात् निधन की खबरें
फैली सर्वत्र सकारे ।
'इस जग मे नही रहे अब
शास्त्री जी हाय! हमारे ।।

जग छायी गहन उदासी
मानवता का क्या होगा ?
हर देश दुखी शोकाकुल
क्या विश्व-शांति का होगा?

भारत के भाग्य-गगन का
हा! टूटा मंगल तारा ।
लुट गया देश का सपना
निष्प्रभ निर्माण निहारा ।।

रो उठा हिमालय असमय
विंध्याचल सिसकी भरता ।
गंगा, रेवा रोती थी
सागर था शीश पटकता ।।

रोती थी भारतमाता
हा! लाल कहा है मेरा?
सीमा भारत की रोती
रखवाल कहा है मेरा ?

रोते जवान भारत के
हा! नायक कहाँ हमारा ?
रोते किसान भारत के
उन्नायक कहाँ हमारा ?

श्रम रोता शान्ति सिसकती
हल कहाँ? समस्या गुनती ।
रज, चरण ढूंढती फिरती
हर नैतिकता सिर धुनती ॥

जनतन्त्र विवेक विलखता
वर राजनीति पछताती ।
न सकी सभाल मानवता
अपनी निधि, अपनी थाती ॥

नभ-वाणी के हर स्टेशन
देते मातम की ताने ।
सब बन्द हुए कार्यालय
सब बन्द हुईं दूकाने ॥

हर नगर, ग्राम, पथ, प्रांगण
शास्त्री जी कहाँ? पुकारे ।
सूने-सूने से लगते
मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे ॥

आयोजित शोक – सभाएं
श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती ।
भारत की आकाक्षाएं
सूने माथे कर धरती ॥

जब वायुयान से उतरी
अरथी ने निज रज परसा ।
आतुर आनन पर शव के
सन्तोष आन्तरिक दरसा ।।

धरती ने नभ को कोसा-
"यह कैसा सुत लौटाया ?
क्यों प्राण ले लिये तुमने ?
इस देह मुझे बौराया ।।"

नभ बोला—"जो मेरा है
बस, वही लिया है मैंने ।
यह देह तुम्हारी ही है
तुमको लौटाया मैंने ।।

तुम देह बनाया करती
मैं प्राण जगाया करता ।
जल, अनल, अनिल भी भागी
सब ईश कराया करता ।।

धीरज धरती का गुण है
सोचो मत, मोह वृथा है ।
युग-युग से चलती आई
जीवन की यही कथा है ।।

बस, राम नाम ही सच है
बाकी सब क्षरने वाला ।
यह मृत्युलोक है तम का
पल भर का यहाँ उजाला ।।

यह देह न तुमको देता
पर विधि से है लाचारी ।
सदियों के बाद संवरती
ऐसी मगल फुलवारी ।।

इस जन-समूह को देखो
कितना वियोग-विह्वल है ।
शास्त्री जी के प्रति इसका
कितना अनुराग प्रबल है ।।

हा! कितना आकुल-व्याकुल
हा! किनना शोक-भरा है ।
भावना एक बस, केवल
रे! क्या अन्यथा धरा है?"

अरथी कधों से उतरी
ललिता ने अवसर पाया ।
सूनी-सूनी आँखो मे
जल फफक-फफक भर आया ।।

"अन्तिम दर्शन हा! स्वामी
यह कैसा साथ निभाया ?
तज अपने चले अकेले
सब कुछ हो गया पराया ।।

सूना ससार हमारा
सूनी जीवन की घाटी ।
सोना हो गया हमारा
हा! हन्त! हायरे! माटी ।।

इससे बढ़कर क्या खोना
रोना ही है अब रोना।
इस जीवन से क्या होना?
है व्यर्थ इसे अब ढोना।।

अब साथ चलूंगी मैं भी
इस बार न रोकें स्वामी!
नारी नर की अनुगामी
भर दे अपनी भी हामी।।"

उर—क्रन्दन मौन—समर्पित
वेदना चेतना पीती।
नयनो से बहती पीड़ा
अनरीती की अनरीती।।

बेहोश हो गयी ललिता
पर प्राण रह गये अटके।
फिर एक बार अनजाने
पति की इच्छा में भटके।।

यह करुण दृश्य था इतना
धीरज ने धीरज खोया।
सारा समुदाय समाकुल
सिसकी भर—भर कर रोया।।

अन्तिम यात्रा के साथी
अन्तिम दर्शन अभिलाषी।
दर्शन ले फूल चढ़ाते
श्रद्धा—नत नमन—अभाषी।।

उस पावन देह चतुर्दिक
लिपटा था केतु तिरंगा।
भीतर चन्दन अवलेपित
लेटी हो जैसे गंगा ।।

ऊपर प्रसून मालाए
नीचे कफनाम्बर झीना।
हो रही कृतार्थ, लुटाती
भर सौरभ भीना-भीना ।।

सोते थे लाल बहादुर
निज सहज, शान्त मुद्रा मे।
सब मौन, हा ? न पड़ जाये
व्यवधान कही निद्रा में ।।

मुख पर थी दैवी आभा
लगता, मुसकाने वाले।
उठ अभी लोक—मानस मे
प्रेरणा जगाने वाले ।।

दर्शन का क्रम अनटूटा
वंदन का बढता मेला।
श्रद्धांजलियो का जमघट
बीती बाती थी बेला ।।

अरथी के पीछे चलता
श्रद्धा का अन्तिम मेला।
पीछे प्राणो का रेला
आगे निष्प्राण अकेला।

जीवन की अन्तिम यात्रा
बन—कुल बढता ही जाता ।
शमशान भूमि तक चलता
यह भौतिकता का नाता ।।

यमुना—तट पहुची अरथी
दो चौक उठी आत्माएं ।
क्या लालबहादुर ? लगता
चन्द्रमा देश के बाए ।।

'सोचा था उस दिन हमने
भारत का भाग्य खिला है ।
प्रिय लालबहादुर जैसा
उसको नेतृत्व मिला है ।।

दृढ देशभक्ति से भावित
ऐसा जग— शांति पुजारी ।
है रहा, न है, या होगा
ऐसा मंगल व्रत—धारी ।।

थे काम अधूरे, यह अब
पूरे करके आयेगा ।
शुभ सत्य, शान्ति का प्रेमिल
सन्देश संग लायेगा ।।

वह हुआ न, यह दिन आया
सब बिगडा बना-बनाया ।
जैसी ईश्वर की इच्छा
यह सब उसकी ही माया ।।"

वंदन के लिए धरा पर
सूरज था लगा उतरने ।
तम दूर दिशाओ से उठ
चल पडा उजाला हरने ।।

इस विजय-घाट पर अब भी
जनता बढती ही जाती ।
देशीय क्रिया-विधि अन्तिम
सम्पन्न करायी जाती ।।

अन्तत चिता धू—धू कर
जल उठी काष्ठ-चंदन की ।
भेंटा भर भुजा पवन ने
आहुतियाँ मिली नमन की ।।

अब गिरा धरा पर सूरज
नभ ने झुक ले की लाली ।
तपते माथे पर अपने
धरती ने भस्म चढा ली ।।

यह भस्म महा मानव के
अवशेष, फूल पावन है ।
मानवता के मंगल में
आहुत प्रभात के कण है ।।

पावन समाधि मे सचित
उनकी अब उज्ज्वल गाथा ।
आ विजय—घाट पर उठता
प्रत्येक नमन का माथा ।।

अगणित मालाधियाँ 'जग में
श्रद्धा की बलती बाती।
पर यह समाधि—निधि न्यारी
है मानवता की थाती ।'

यह विश्व—बंधुता—दर्शन
हर भेद भुलाने वाली।
मस्तिष्क हृदय के जग का
संतुलन-सुझाने वाली ॥

यह जन-जन के मंगल का
संसार बसाने वाली।
साधन के बिना, लगन से
इतिहास बनाने वाली ॥

यह श्रम-मंदिर की प्रतिमा
नैतिकता, की निर्झरिणी।
यह राजनीति की शुचिता
आदर्शों की आचरणी ॥

यह शान्ति-अहिंसा वीथी
गणतंत्र ऋचा जन-वेदी।
अधिकारों की मर्यादा
यह कर्तव्यों की वेदी ॥

यह कीर्तिजयी मंजूषा
यह जय जवान की गरिमा।
यह हरित क्रांति की कुंजी
यह जय किसान की महिमा ॥

निष्काम कर्म की गीता
यह सरल हृदय की दृढता ।
यह मानस की चौपाई
शिव सत्यमयी सुन्दरता ।।

जनमन की शांति मढी यह
शिव सकल्पो की गरिता ।
यह महात्याग की सस्मृति
यह देश-प्रेम की कविता ।।

यह अकिचनो की आशा
यह प्रगति-कोष की भाषा ।
यह प्रीति—प्रतीति—प्रतिष्ठा
यह जीवन की परिभाषा ।।

सेवा की मूक कहानी
प्रेरणा—प्रभा पहचानी ।
मगलमय अमिट निशानी
यह परम्परा बलिदानी ।।

श्रद्धा के दीप जलेगे, गौरव से शीश झुकेगे ।
इस लघु समाधि से प्रेरित, मन-मन सद्भाव जगेगे ।।
हे शान्तिमना ! जनसेवी, फिर आओ इस नन्दन मे ।
लो, शब्द—सुमन श्रद्धाञ्जलि, अर्पित सादर वंदन मे ।।

❦ ❦ ❦

राजघाट मे योगी सोया, सत्य अहिसा प्रेम भरे ।
शांति घाट में सपना सोया, विश्व शांति, युग क्षेम भरे ।।
विजय घाट मे त्यागी सोया, जन-जन का जय गान भरे ।
जाग रहा हर भारतीय, उन राहों मे अभियान भरे ।।

# -: श्रद्धाँजलि :-

गंगा की इस पूत धरा पर हुए सपूत अनेक ।
गाँधी, तिलक, सुभाष, जवाहर और एक से एक ॥
किन्तु कहाँ श्री लालबहादुर शास्त्री जैसा लाल ।
व्यापक हित के लिए कहाँ वैसा उत्सर्ग विशाल ॥
पहनायी जिसने स्वदेश को अनुपमेय जयमाल ।
मानवता का अनुरागी वह वसुन्धरा का लाल ॥
हर भारतवासी का जिससे ऊंचा गौरव, भाल ।
शास्त्री सा सुत पाकर भारतमाता हुई निहाल ॥
उस लघुकाय सुमन का ऐसा वर व्यक्तित्व विशाल ।
सौरभ से भर गयी हर गली; हर जीवन की डाल ॥
स्वार्थ सिन्धु में उभरा वह परस्वार्थ चेतना-द्वीप ।
राष्ट्रदेव की विमल आरती का निर्धूम प्रदीप ॥
वैभव मे भी रहा अकिंचन उर में नित सन्तोष ।
सादा जीवन, उच्च विचारों का नव अनुपम कोष ॥
जीवन के संघर्षों में वह अटल रहा रण-धीर ।
स्वतंत्रता के आन्दोलन का सेनानी वह वीर ॥
सत्य, अहिंसा के पालन में जाग्रत सदा विवेक ।
किससे समता करें आप वह अपने जैसा एक ॥
यह उसका विश्वास कि उत्तम साधन, उत्तम साध्य ।
गाँधी के आदर्श रहे उसके सदैव आराध्य ॥
'जय जवान' जय जय किसान' का नारा दिया विशेष ।
गूंज रहा अब भी जन-जन में वह उद्घोष अशेष ॥
बहु चर्चित हैं जग में जिसके मंगल जय आख्यान ।
भूल सकेंगे कभी युगो को क्या उसके वरदान ?